सुबद्ध शिक्षा प्रकाशन १२

अनौपचारिक शिक्षा ८-१४

NON FORMAL EDUCATION 8-14

• चतरसिंह मेहता •
• पन्नालाल वर्मा •

FOR REFERENCE ONLY

NIEPA DC
D00310

शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर (राजस्थान)
Education Department Rajasthan. BIKANER (Raj. India)

© शिक्षा विभाग, राजस्थान
बीकानेर

544
374.5
MEH-A

□

संस्करण
1976

□

Sub-National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No. 310
Date 15/7/82

लेखक :
बलवंतसिंह मेहता
पन्नालाल शर्मा

□

आवरण :
[illegible]

□

मुद्रक :
जयपुर प्रिन्टर्स
जयपुर (राजस्थान)

FOR REFERENCE ONLY

प्राक्कथन

राज्य-सरकार ने पिछले वर्षों प्राथमिक-शिक्षा के विस्तार के लिए जो बहुमुखी प्रयत्न किए वे निस्सन्देह सफल सिद्ध हुए, तथापि किशोरों तथा नवयुवकों का एक बड़ा प्रतिशत अब तक भी शिक्षा से वंचित रहता चला आ रहा है। फिर ऐसे शिक्षार्थियों की संख्या भी कम नहीं है, जो इस व्यवस्था को सुविधाजनक नहीं पाते और प्राथमिक शिक्षा पूर्ण किए बिना विद्यालय छोड़ जाते हैं।

अतः विद्यालय छोड़ जाने वाले किशोरों तथा नवयुवकों को उनकी सुविधा के अनुसार शिक्षा उपलब्ध कराने की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की गई। सन् १९७४ में राज्यादेश संख्या एफ-८ (५८) शिक्षा/ग्रुप-१/७३ दिनांक ३० अक्तूबर १९७४ के द्वारा राज्य के कुछ नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयोगात्मक रूप में खोले गए। ये केन्द्र आयु-वर्ग ८-१४ तथा आयु-वर्ग १५-२५ के लिए पृथक-पृथक खोले गए।

परम्परित व्यवस्था से एक भिन्न संकल्पना पर आधारित होने के कारण अनौपचारिक-शिक्षा के आधारिक संप्रत्यय (कंसेप्ट), उसके शिक्षाक्रम तथा उसकी परिवीक्षण आदि की अपेक्षाओं को स्पष्ट करते हुए, तत्सम्बन्धी शिक्षा-केन्द्रों के सुचारु संगठन, संचालन तथा वीक्षण आदि में लगे हुए कार्यकर्ताओं के उपयोगार्थ ऐसी लघु-पुस्तिकाएँ कि जिनका वे संदर्शिका-वत् उपयोग कर सकें, तैयार कराया जाना आवश्यक समझा गया। यह कार्य शिक्षा-निदेशालय द्वारा की गई अपेक्षा के अनुसार राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बीकानेर ने सम्पन्न किया और आयु-वर्ग ८-१४ तथा आयु-वर्ग १५-२५ के लिए पृथक-पृथक दो लघु पुस्तिकाएं तैयार की।

मुझे विश्वास है इन पुस्तिकाओं से अनौपचारिक शिक्षा-कार्य में संलग्न कार्यकर्ताओं को अपने कार्य के सुचारु सम्पादन में समुचित सहायता मिल सकेगी।

इन्द्रजीत खन्ना
निदेशक
प्राथ० एवं माध्य० शिक्षा, राज०
बीकानेर

बीकानेर
१-७-७६

क्रम

3 आवश्यकता

7 संकल्पना

13 स्वरूप

24 [illegible]

१ आवश्यकता

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है। राजस्थान में गाँव-गाँव में विद्यालय खोले जा चुके हैं और शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों को छोटे से छोटे गाँव तक भी पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है। सन् १९५१ में ४३१९ प्राथमिक एवं ७१२ उच्च प्राथमिक विद्यालय थे। सन् १९७३-७४ में इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः १९३८१ तथा ४८३७ अर्थात चार गुना से भी अधिक हो गई। बालक-बालिकाओं को विद्यालय में अधिकाधिक संख्या में आकर्षित करने की दृष्टि से कई प्रयत्न किए गए, यथा—विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क मध्याह्न-भोजन तथा पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था करना, माता-पिता को शिक्षा की उपयोगिता के प्रति जागरूक करना, पिछड़ी तथा अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति की विशेष व्यवस्था करना, पूर्व-प्राथमिक कक्षाएँ खोलना, अविभक्त पढ़ाई योजना लागू करना, अध्यापिकाओं की अधिकाधिक संख्या में नियुक्ति करना, प्रभावी परिवीक्षण के लिए कदम उठाना, प्राथमिक स्तर पर अच्छा कार्य करने वाले तथा नामांकन कार्य में प्रशंसनीय कार्य करने वाले शिक्षकों को प्रोत्साहन व पुरस्कार देना आदि। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा भी पूर्णतः निःशुल्क है।

शिक्षा को सुलभ एवं निःशुल्क बना देने के बावजूद आज सार्वजनीन प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के संदर्भ में संविधान की धारा ४५ में निहित लक्ष्यों से

हम काफी पीछे हैं। धारा ४५ में यह लक्ष्य निश्चित किया गया था कि १९६० तक १४ वर्ष तक की आयु तक के सभी बालक-बालिकाओं को शिक्षित कर दिया जाना चाहिए। किन्तु राजस्थान की स्थिति आज यह है कि ६-११ आयु-वर्ग के केवल ५५ प्रतिशत और ११-१४ आयु-वर्ग के ३५ प्रतिशत छात्र-छात्राएं ही शिक्षा के इन अवसरों का लाभ उठा रहे हैं। इनमें छात्राओं का औसत काफी कम है। इस स्थिति को यदि शिक्षा में हो रहे अपव्यय के संदर्भ में आंकें तो लाभान्वित विद्यार्थियों की यह संख्या भ्रांतिपूर्ण बन सकती है, क्योंकि पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाले इन विद्यार्थियों में से लगभग दो-तिहाई छात्र-छात्राएं पाँचवीं कक्षा उत्तीर्ण होते-होते विद्यालय छोड़ बैठते हैं और निरक्षरों की श्रेणी में जुड़ जाते हैं।

यदि गहराई से देखें तो विद्यालयी शिक्षा, जिसे औपचारिक शिक्षा कहा जाता है, का पूरा अथवा आंशिक लाभ भी न उठा पाने का मुख्य कारण है–निर्धनता। इसका यह अर्थ नहीं कि शिक्षा इतनी खर्चीली है कि निर्धन छात्र-छात्राएं उससे लाभान्वित नहीं हो पाते। वस्तुतः शिक्षा तो निःशुल्क है, परन्तु औपचारिक शिक्षा की व्यवस्थाएं ही कुछ ऐसी हैं कि परिवार के भरण-पोषण में सहायता देने वाले बालक और बालिकाएं शिक्षा के इन अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते। विद्यालय का समय भी ऐसा होता है कि या तो बालक विद्यालय में शिक्षा पाएं अथवा परिवार के भरण-पोषण में माता-पिता व अभिभावकों का हाथ
4 बटाएँ–इन दो विकल्पों में से एक को चुनने के लिए बाध्य होना पड़ता है। स्पष्ट है कि निर्धन परिवार के बालकों को दूसरा विकल्प चुनने को मजबूर होना पड़ता है, फलतः वे शिक्षा के अवसरों से वंचित रहते हैं। और इस प्रकार सार्वजनीन शिक्षा की दिशा में किए गए कई प्रोत्साहन-मूलक तथा सघन प्रयत्न भी आशानुकूल परिणाम नहीं दे पाते।

फिर, औपचारिक शिक्षा का ढांचा बालक से निरंतर तथा निश्चित अवधि के लिए उपस्थित रहकर क्रमबद्ध शिक्षा प्राप्त करने की शर्त लगाता है। यदि कोई बालक इस शर्त का पालन नहीं कर पाता–वैयक्तिक कारणों अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण, तो वह असफल घोषित कर दिया जाता है तथा उसे पुनः एक वर्ष के लिए पढ़े हुए पाठ्यक्रम को वापस पढ़ना पड़ता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि कई बालक शिक्षा के अवसरों का लाभ उठाने की चाह रखते हुए भी विद्यालय छोड़ने को बाध्य हो जाते हैं।

कई अभिभावकों की यह भी मान्यता है कि विद्यालयी शिक्षा से उनके धंधे में कुछ कुशलता बढ़े, यह तो होता नहीं, इसके विपरीत यह संभावना अवश्य रहती है कि बालक विद्यालय में कुछ समय तक पढ़ लेने के बाद अपने पैतृक अथवा घरेलू धंधे से ही अलग हो जाए। इस मान्यता का अर्थ यह है कि औपचारिक शिक्षा का सकारात्मक संबंध लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन से नहीं बैठ पाया है। जब तक पाठ्यक्रम का स्थानीय सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों

से सीधा सम्बन्धित न किया जाएगा तब तक औपचारिक शिक्षा और व्यावहारिक जीवन में अलगाव बना रहेगा, ऐसी संभावना है।

ज्ञान की व्यापक वृद्धि तथा वैज्ञानिक प्रगति की द्रुत गति के कारण जीवन में जो परिवर्तन तेज रफ्तार से आ रहे हैं, फलतः पुरानी मान्यताएँ टूट रही हैं, नई मान्यताएँ उभर रही हैं और आदमी अपने जीवन में नाना प्रकार की समस्याओं की अनुभूति कर रहा है। यही नहीं, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक भिन्नताओं के कारण भी हर बालक की विशिष्ट आवश्यकताएँ होती हैं, किन्तु औपचारिक स्कूली शिक्षा के संगठन, पाठ्यक्रम, समयावधि, स्थान आदि में इतनी जड़ता तथा निश्चितता होती है कि वह शिक्षा को शिक्षार्थी की व्यक्तिगत आवश्यकता के अनुरूप लचीली तथा गत्यात्मक बना सकने की क्षमता को सीमित कर देती है।

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि औपचारिक शिक्षा की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि केवल उसी पर निर्भर रहने से हम सार्वजनीन शिक्षा के लक्ष्यों को लम्बे समय तक भी पूरा नहीं कर सकेंगे।

किन्तु सार्वजनीन शिक्षा की आवश्यकता एवं उसके महत्व को, मात्र औपचारिक शिक्षा की इन सीमाओं को देखकर, नकारा तो नहीं जा सकता। इसके विपरीत यह समस्या तो हमारे सामने एक और भी चुनौतीपूर्ण स्थिति प्रस्तुत करती है। सार्वजनीन शिक्षा एक संवैधानिक दायित्व है; हमारा कर्तव्य है। वैसे भी राष्ट्रहित में वह आवश्यक है। अब यह शोध-निष्कर्षों से भी सिद्ध हो चुका है कि शिक्षा में धन का निवेश करने से देश के आर्थिक विकास में गति आती है। और, यही कारण है कि आज हम सार्वजनीन शिक्षा के महत्व तथा जिज्ञासु समाज की कल्पना पर बल देने लगे हैं। अतः यदि हमें देश को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाना है तथा उसे विकसित देशों में प्रतिष्ठित स्थान दिलाना है तो सार्वजनीन शिक्षा के संकल्प को पूरा करने के लिए कुछ नये और सघन प्रयत्न करने ही होंगे। हमारे सामाजिक ढाँचे का आधुनिकीकरण करने तथा प्रजातांत्रिक संस्थाओं को अधिक क्रियाशील रखने के लिए सार्वजनीन शिक्षा परमावश्यक है। समानता के अवसरों की कल्पना को साकार करने की बात भी इस बात पर निर्भर करती है कि हम सार्वजनीन शिक्षा को वरीयता-क्रम में कितना ऊँचा स्थान देते हैं।

और, इस दृष्टि से औपचारिक शिक्षा की सीमाओं को स्वीकार करते हुए भी, सार्वजनीन शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्व को ध्यान में रखते हुए हमें एक अनुपूरक शिक्षा व्यवस्था की भाँति अनौपचारिक शिक्षा का संकल्प लेना ही होगा, जो औपचारिक शिक्षा की सीमाओं को पूरक बने, जो शिक्षा के प्रसार में बाधक तत्वों से उत्पन्न समस्याओं का समाधान करे, जो बालक को अपने घर से बिना हटाए ही उसे शिक्षा के अवसर सुलभ कराए, जो उसके जीवन के कामों और शिक्षा में परस्पर संबंध स्थापित करने की व्यवस्था करे।

अनौपचारिक शिक्षा की आवश्यकता और महत्व को औपचारिक शिक्षा

की सीमाओं के कारण ही नहीं, नई परिस्थितियों से उत्पन्न कतिपय सकारात्मक तत्त्वों से भी बल मिलता है :

(१) अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि औपचारिक व्यवस्था से प्राप्त शिक्षा किसी के लिए भी काफी नहीं है। औपचारिक शिक्षा के परिणामस्वरूप एक ओर जहाँ शिक्षित लोगों की ज्ञान-पिपासा बढ़ गई है अथवा अन्य लोगों की तुलना में जहाँ उन्हें स्वयं के ज्ञान की न्यूनता का बोध होने लग गया है, वहाँ उन लोगों के मन में शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ गया है, जो परिस्थितिवश शिक्षा से वंचित रह गये हैं। इन दोनों ही समस्याओं का समाधान अनौपचारिक शिक्षा के प्रसार में है।

(२) आज का समाज शैक्षिक महत्त्व के इतने नये-नये और उपयोगी साधनों से सम्पन्न है कि जितने इससे पूर्व कभी नहीं रहे। यहाँ तक कि जिन प्रवृत्तियों का पहले शैक्षिक मूल्य नहीं लिया जाता था उनमें भी शिक्षा के अवसर प्राप्त होने की संभावनाएँ प्राप्त हो गई हैं, यथा—नागरिक जीवन, साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाएँ, विभिन्न उद्योग धंधे, संचार साधन जैसे-रेडियो व टेलीविजन, सस्ती तथा जेबी किताबें, पुस्तकालय, वाचनालय, इश्तिहार-परिपत्र, मेलकूद के स्थल, सिनेमा, पत्राचार-पाठ्यक्रम आदि-आदि। वैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तनों ने, जैसा कि स्पष्ट है, अनौपचारिक शिक्षा के अवसरों का विस्तार बहुत कर दिया है। आवश्यकता है, उन्हें प्रयोजनबद्ध रूप से व्यवस्थित करने की।

(३) अब यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि शिक्षा देने का उत्तरदायित्व निभाने में इस कार्य के लिये नियुक्त शिक्षक ही नहीं, वरन् अपने-अपने काम-धंधों में लगे हजारों-लाखों शिक्षित तथा बुद्धिजीवी लोग भी योगदान दे सकते हैं, बशर्ते कि उनकी सेवाओं को प्राप्त करने की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाएँ।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनीन शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की अनुपादेयता भले ही सिद्ध न होती हो, उसकी उपादेयता की सीमा अवश्य स्पष्ट हो जाती है। न केवल लोगों के अपने व्यक्तिगत कारण अपितु औपचारिक शिक्षा के अपने प्रकृतिगत कारण भी उसकी इस उपयोगिता की सीमा बाँधते हैं। इस प्रकार न केवल औपचारिक शिक्षा के नकारात्मक तत्त्वों ने, अपितु वैज्ञानिक एवं सामाजिक परिवर्तनों से प्राप्त नये शैक्षिक साधनों ने भी अनौपचारिक शिक्षा की आवश्यकता एवं महत्त्व को सिद्ध कर दिया है।

२ संकल्पना

शिक्षा पाने के दो रूप औपचारिक एवं सहज संयोग तो स्वीकारित है। औपचारिक शिक्षा में व्यवस्था की बाध्यता, नियमों की बाध्यता, श्रेणीबद्धता के औपचारिक बंधन जितने दृढ़ होते है, सहज संयोग से प्राप्त शिक्षा में उनका उतना ही अभाव होता है। चलते, सहज संयोग की शिक्षा आकस्मिक एवं अप्रशिक्षित होती है, वह व्यवस्था-मुक्त होती है। अनौपचारिक शिक्षा को हम इन दोनों स्थितियों के बीच में रख सकते हैं जो एक ओर तो औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था को स्वीकार करती है और दूसरी ओर सहज संयोग के अनुभवों को शैक्षिक अर्थ देती है। जैसा कि इसके विश्लेषण से व्यनित होता है और जैसा कि शब्द व्युत्पत्ति से भी ज्ञात होता है, अनौपचारिक शिक्षा औपचारिकता से मुक्त एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था है, जो औपचारिक शिक्षा की सीमाओं व कमियों की पूर्ति करती है। जब हम अनौपचारिक शिक्षा को एक व्यवस्था मानते है तो यह संदेह हो सकता है कि जब व्यवस्था है तो औपचारिकता का तत्व तो विद्यमान होगा ही। चूंकि इस

व्यवस्था में औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में निहित वे औपचारिक तत्व नहीं हैं, जो सार्वजनीन शिक्षा की दिशा में उसकी क्षमता को सीमित करते हैं, इसलिए अनौपचारिक शिक्षा को औपचारिकता से मुक्ति की ओर उन्मुख व्यवस्था कहना उपयुक्त होगा। किन्तु इसका यह आशय कदापि नहीं कि अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रमों का कोई निश्चित लक्ष्य या उसके पाठ्यक्रम का कोई स्वरूप नहीं होता अथवा कि उसमें तारतम्य एवं आयोजन का अभाव रहता है। उसमें ये सभी बातें हैं तो सही, परन्तु हर स्थान पर उनमें एकरूपता का आग्रह नहीं होता। यह व्यवस्था स्थान विशेष की आवश्यकतानुसार अपने को ढालती है।

"अनौपचारिक शिक्षा" को औपचारिक शिक्षा के विरोध में या उसके विकल्प में भी नहीं माना जा सकता। दोनों एक दूसरे की पूरक हैं। उनमें जो अन्तर है – वह है उनके स्वरूप में, संगठन में, दृष्टिकोण में। अनौपचारिक शिक्षा का विशेष लक्षण यह है कि इसका स्वरूप और व्यवस्था शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं के अनुरूप होती है। फलतः इसमें स्वरूप या संगठन की एकरूपता, कठोरता और नियमबद्धता पर आग्रह नहीं होता। स्पष्ट है कि इसमें अनौपचारिक शिक्षा में स्थान और परिस्थितियों के अनुसार विविधता आना स्वाभाविक है। एकरूपता और कड़ी नियमबद्धता से मुक्त होने के कारण यह लचीलापन लिए हुए स्वायत्तशासी व्यवस्था होती है।

औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से तुलना किए जाने पर अनौपचारिक शिक्षा का अर्थ और अधिक स्पष्ट हो सकेगा :

१. औपचारिक शिक्षा के ढांचे में शिक्षा नीचे से ऊपर की ओर श्रेणियों में विभक्त होती है। बालक को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रतिवर्ष क्रमशः इन श्रेणियों (कक्षा प्रथम से विश्वविद्यालयी कक्षा तक) में से गुजरना पड़ता है। इस क्रम में कोई छूट नहीं है। छात्र औसत वर्ग का हो अथवा मेधावी, उसे इस क्रमिकता के क्रम से गुजरना ही होता है तथा एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में पहुँचने में कम से कम एक वर्ष तो बिताना ही पड़ता है, चाहे वह मेधावी और परिश्रमी हो। यदि कोई छात्र किसी परिस्थिति के कारण परीक्षा में निर्धारित अंक प्राप्त नहीं करता तो वह पुनः एक वर्ष तक पढ़े हुए पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिए बाध्य होता है। अनौपचारिक शिक्षा में इस औपचारिकता का बंधन नहीं है। शिक्षार्थी अपनी क्षमता एवं गति के अनुरूप किसी भी स्तर के पाठ्यक्रम को ले सकता है तथा बिना किसी प्रकार के बंधन के, मन्द या तीव्र जैसी जिसकी गति हो, उसके अनुसार आगे के पाठ्यक्रम की ओर बढ़ सकता है।

२. औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षण का समय निश्चित होता है तथा राज्य में सभी शिक्षण संस्थाएं तदनुरूप ही खुलती, चलती एवं बंद होती हैं। विद्यार्थी के लिए वह समय सुविधाजनक है या नहीं, इसका प्रश्न ही नहीं उठता। वहाँ सीधा-सा उत्तर है – यदि विद्यार्थी को पढ़ना है तो उसे निर्धारित समय में ही अपने पारिवारिक अथवा व्यावसायिक कामों को छोड़कर आना पड़ेगा तथा

विद्यालय में नियमानुसार उपस्थिति देनी होती। पढ़ने का यह समय दिन में होता है और फलतः विद्यार्थी खेती-बाड़ी अथवा किसी अन्य काम-धंधे में रत हो या अपने परिवार के भरण-पोषण में हाथ बँटाना चाहे तो उसके सामने एक ही मार्ग खुला रहता है। वह यह कि यदि पढ़ना है तो घर के काम-धंधे में हाथ बँटाने का त्याग करना होगा और घर के काम-धंधे में सहायक बनना है तो शिक्षा का मोह छोड़ना होगा। इस प्रकार निश्चित समय के आग्रह के कारण बालक को शिक्षा एवं उसके व्यावहारिक जीवन के बीच असंगति की स्थिति आ खड़ी होती है।

इसके विपरीत अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में समय का पूर्व-निर्धारण बिना शिक्षार्थियों की सुविधा का विचार किए नहीं किया जाता। स्थानीय परिस्थितियों को देखकर शिक्षण का समय निश्चित किया जाता है। स्थानीय परिस्थितियों में नये परिवर्तन आ जाने पर पुनः समय में परिवर्तन किया जा सकता है। समय-निर्धारण का मुख्य आधार होता है – शिक्षार्थियों की सुविधा। चूंकि यह माना जाता है कि अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत शिक्षार्थी वे होंगे जो अपने काम-धंधे में लगे हैं और इसलिए उस काम-धंधे से समय निकलने पर ही वे पढ़ने के लिए आ सकेंगे अतः यहाँ शिक्षण का समय शिक्षार्थियों की सुविधानुसार ही होता है, ताकि शिक्षार्थी के काम-धंधे तथा उसकी शिक्षा में टकराव न हो, अपितु उनके समय में समुचित तालमेल हो। इस के उपरान्त भी शिक्षार्थी के लिए अनिवार्य उपस्थिति का बंधन नहीं होता, यद्यपि नित्य तथा अधिकाधिक उपस्थिति की अपेक्षा अवश्य की जाती है। 9

३. औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षण की एक इकाई (कक्षा) पूरी करने के लिए निश्चित समयावधि एक वर्ष है। विद्यार्थी को प्रतिदिन लगभग छह घंटे विद्यालय में उपस्थित रहना आवश्यक है। यदि कोई मेधावी एवं परिश्रमी छात्र इस अवधि में निर्धारित पाठ्यक्रम से आगे बढ़ना चाहे तो उसके लिए वैसी छूट नहीं होती। किन्तु अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में कोई इकाई पूरी करने के लिए निश्चित समयावधि की शर्त नहीं होती, प्रतिदिन कितने समय का शिक्षण हो, यह भी स्थानीय आवश्यकता, परिस्थिति तथा शिक्षार्थियों की सुविधा के अनुसार तय होता है और उसमें यथास्थिति फेर-बदल भी संभव हो सकता है। धारणा है कि शिक्षार्थी काम-धंधे से लौटकर ही अनौपचारिक व्यवस्था में पढ़ने आते हैं, अतः शिक्षण की समयावधि दो-तीन घंटे से अधिक न हो।

एक बात और। औपचारिक व्यवस्था में निर्धारित समयावधि निश्चित घंटों में भी विभक्त होती है। निश्चित घंटे में ही निश्चित विषय का शिक्षण होता है। किन्तु अनौपचारिक व्यवस्था में यह बंधन भी नहीं है। वहाँ शिक्षार्थी की रुचि तथा इच्छानुसार समय का नियोजन एवं उपयोग किए जाने का प्रयत्न किया जाता है।

४. औपचारिक व्यवस्था में शिक्षण के लिए निश्चित स्थान होता है। वह होता है – विद्यालय भवन। यदि कतिपय विद्यार्थियों के लिए यह स्थान

सुविधाजनक हो तो भी उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं होती। अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में स्थान निश्चित तो किया जाता है किन्तु उस स्थान में फेर-बदल शिक्षार्थियों की सुविधानुसार हर समय संभव है। यह स्थान विद्यालय-भवन, चौपाल, पंचायत-भवन, मन्दिर या मस्जिद कहीं भी हो सकता है। फिर किसी अपवाद-विशेष के कारण शिक्षण-स्थल विद्यालय-भवन से चौपाल अथवा चौपाल से मन्दिर अथवा मन्दिर से पंचायत भवन तक बदलता भी रह सकता है। यह भी संभव है कि कभी शिक्षण-स्थल किसी व्यक्ति का खेत बन जाए। हाँ, इसकी सूचना यथा-समय शिक्षार्थियों को दे दी जाती है।

५. औपचारिक व्यवस्था में विद्यार्थी क्या पढ़ें – इसका निर्धारण पहले से ही संबद्ध अधिकारी अथवा अभिकरण द्वारा कर दिया जाता है। फिर इस पाठ्यक्रम को क्रमिक इकाइयों में विभक्त करके विद्यार्थियों के लिए उसी क्रम से पढ़ने की बाध्यता रहती है। एक इकाई पूरी करने पर तथा अपेक्षित उपलब्धि होने पर ही दूसरी इकाई पढ़ने की पात्रता आती है, ऐसा माना जाता है। पाठ्यक्रम को क्रमिक रूप से पढ़ने की यह अनिवार्यता प्रत्येक विद्यार्थी – मन्द बुद्धि हो या मेधावी अथवा औसत दर्जे का – पर लागू रहती है। अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में स्थानीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रख कर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है। यद्यपि कुछ बातें पूरे राज्य स्तर पर एक समान हो सकती हैं परन्तु व्यवसाय व वातावरण सम्बन्धी ज्ञान तो स्थान और पात्रों की आवश्यकतानुसार भिन्न ही रहेगा। अनौपचारिक व्यवस्था में जो पाठ्य विषय होते हैं वे कठिनाई की दृष्टि से इकाइयों में विभाजित तो रहते हैं किन्तु उन्हें उसी क्रम से पढ़ने की अनिवार्यता नहीं होती। क्रमिकता अनिवार्य हो नहीं है। वहाँ शिक्षार्थी इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह किसी भी इकाई को पढ़े, कभी एक पूरी करके दूसरी पढ़े अथवा कोई और क्रम अपनाए। इस प्रकार जहाँ एक ओर पाठ्यक्रम में वैविध्य तथा लचीलापन रहता है, वहाँ दूसरी ओर अनिवार्यता के स्थान पर स्वतन्त्रता की स्थिति रहती है, क्षमता तथा रुचि के अनुरूप पढ़ने की और अपना क्रम व अपनी गति निर्धारित करने की छूट रहती है।

६. औपचारिक व्यवस्था में विद्यार्थियों को उनकी उपलब्धि के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है तथा प्रत्येक वर्ग (कक्षा) के विद्यार्थी को अपने समूह के साथ निश्चित पाठ्यक्रम पूरे वर्ष तक पढ़ना पड़ता है। एक वर्ग (कक्षा) का विद्यार्थी अपनी उपलब्धि या क्षमता के आधार पर किसी दूसरे उच्च वर्ग के विद्यार्थी के साथ पढ़ना चाहे तो उसे वैसी स्वतंत्रता नहीं होती। इसके विपरीत अनौपचारिक व्यवस्था में शिक्षार्थियों का अस्थायी वर्गीकरण शिक्षण-व्यवस्था को सुविधाजनक बनाने के लिए किया अवश्य जा सकता है, किन्तु वह वर्गीकरण वर्ष भर के लिए स्थायी नहीं रहता। क्षमता एवं उपलब्धि अथवा शिक्षार्थी की रुचि के अनुरूप वर्गीकरण के परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है।

जैसा कि स्पष्ट है औपचारिक शिक्षा में छात्रों के वर्गीकरण का आधार है शिक्षोपलब्धि, जिसका आकलन सत्रान्त में ली गई परीक्षा के प्राप्तांकों के आधार

पर किया जाता है। यदि परीक्षार्थी उत्तीर्णांक प्राप्त नहीं करता तो उसे पुनः उसी कक्षा में एक वर्ष और रहना पड़ता है, और अपने सहपाठियों से बिछुड़ तथा पिछड़ जाना पड़ता है। इसके विपरीत यदि कोई विद्यार्थी अति उच्च अंक प्राप्त कर असाधारण मेधा एवं क्षमता का परिचय देता है तो भी वह अपने औसत दर्जे के सहपाठी के साथ ही अगले वर्ष (कक्षा) में जाने को मजबूर होता है। अनौपचारिक व्यवस्था में ऐसा बंधन नहीं होता।

७. अनौपचारिक शिक्षा शिक्षक-केन्द्रित नहीं है। शिक्षा की प्रक्रिया शिक्षक के निर्देशों पर चलती है, विद्यार्थी को पूर्णतः श्रोता बनकर शिक्षक पर निर्भर रहना होता है। उसकी पहल का वहां कोई मूल्य नहीं! क्या पढ़े, इसमें उसकी रुचि का कोई स्थान नहीं! शिक्षक का निर्देश सर्वोपरि तथा वही विद्यार्थी की क्रिया का विधायक! किन्तु अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका एक ऐसे व्यक्ति की होती है जो शिक्षार्थियों के लिए समुचित शिक्षा के अवसर जुटाए। प्रयत्न यह रहता है कि शिक्षार्थी पहल करे कि वह क्या पढ़ना चाहता है, कहां से पढ़ना शुरू करना चाहता है, कैसे पढ़ना चाहता है। शिक्षक के निर्देशों का स्थान होता है केवल मार्ग-दर्शक के रूप में, आदेश देने वाले के रूप में नहीं। यदि शिक्षक के बताए गए बिन्दु से भिन्न बिन्दु किसी भिन्न रूप में भी शिक्षार्थी पढ़े तो शिक्षक, जो मात्र केन्द्र संचालक होता है, को कोई एतराज नहीं होता। केन्द्र संचालक अपने प्रयत्नों का पुनर्नियोजन इस प्रकार करता है कि उससे शिक्षार्थी को उस भिन्न स्थिति में भी शिक्षा के समुचित अवसर मिल सकें। इस प्रकार औपचारिक व्यवस्था में शिक्षक की चिन्ता जहां निश्चित अवधि में पाठ्यक्रम पूरा करने की रहती है तथा तदनुसार ही वह अध्यापन विधियों को अपनाता है, वहां अनौपचारिक व्यवस्था में शिक्षक इस बात पर विशेष ध्यान देता है कि वह किस प्रकार अधिकाधिक तथा अधिक अच्छी तरह शिक्षार्थी के सीखने के प्रयत्न में सहायक हो सकता है। औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में, पाठ्यक्रम पूरा करने की चिन्ता से ग्रस्त अध्यापक बहुधा भाषण-विधि का ही सहारा लेता है, किन्तु अनौपचारिक शिक्षा में संवाद को अधिक महत्व मिलता है।

शिक्षा के समुचित अवसर जुटाने की दृष्टि से भाषण के बजाय (यों यथा-आवश्यक रूप में कभी भाषण का प्रयोग भी किया जा सकता है) अन्य उपलब्ध साधनों, यथा—रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, समुदाय में आयोजित सांस्कृतिक कार्यक्रम (जैसे—रामलीला, कठपुतली-नृत्य, लोक-नृत्य, ग्रामीण मेला, ग्रामोत्सव, पंचायत की बैठक, जाति-सुधार-समिति की बैठक, भजन मंडली आदि) तथा विभिन्न अधिकारियों एवं अभिकरणों की सेवाओं आदि का भी समुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है। यह भी संभव है कि किसी उद्योग या व्यवसाय की प्रक्रिया को समझाने के प्रयोग से वह शिक्षार्थियों को कुशल कारीगर की सेवाएं जुटाये अथवा शिक्षार्थियों को कुशल कारीगरों की कार्यप्रणाली के लिए कार्य-स्थल पर ले जाये। इस प्रकार कई दृष्टियों से, केन्द्र संचालक का कार्य अनेक बार मात्र शिक्षा-समन्वयक का ही बन जाता है।

उपरोक्त तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था की मुख्य विशिष्टता यह होती है कि उसमें शिक्षार्थी की आवश्यकता एवं सुविधा को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है। इस व्यवस्था में शिक्षार्थी की सुविधा एवं आवश्यकता के अनुरूप ही समय का निर्णय, समयावधि का निश्चय, स्थान का निर्धारण तथा फेर-बदल, पाठ्यवस्तु का आयोजन तथा शिक्षण-विधि के स्वरूप का निश्चय किया जाता है। व्यवस्था में लचीलापन होता है, किन्तु साथ ही सुविचारित आयोजन। हाँ, इस आयोजन में शिक्षार्थियों की सुविधा एवं आवश्यकता के अनुरूप फेर-बदल किए जाते हैं, शिक्षक शिक्षण पर हावी नहीं रहता, वह अधिकांशत: एक संचालक अथवा समन्वयक होता है जो स्थानीय स्तर पर उपलब्ध विभिन्न अधिकारियों एवं अभिकरणों अथवा संचार-साधनों के माध्यम से शिक्षार्थी के लिये शिक्षा के अवसर जुटाने का कार्य करता है, और उन्हें समायोजित करता है। चूँकि यह स्थिति स्थान-भेद से भिन्न-भिन्न होती है, अत: अनौपचारिक शिक्षा वस्तुत: अपने-अपने स्थान पर स्वाभाविक रूप में कहीं अधिक प्रभावी एवं फलदायी मानी जाती है। इसके कई स्वरूप मिल सकते हैं। उसकी स्थिति इस बात पर निर्भर करती है कि स्थानीय परिस्थितियाँ क्या हैं, स्थानीय आवश्यकताएँ क्या हैं?

यहाँ यह और स्पष्ट हो जाना चाहिए कि अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था औपचारिक शिक्षा व्यवस्था की न तो विरोधी है न प्रतिद्वन्द्वी। जैसा कि ऊपर एकाधिक बार कहा भी जा चुका है, ये एक दूसरे की पूरक हैं। एक व्यवस्था से
12 निकले शिक्षार्थी का दूसरी व्यवस्था में स्वागत होता है, उसकी क्षमता एवं उपलब्धि के अनुरूप उसे आगे पढ़ने के अवसर दिए जाते हैं। क्योंकि दोनों ही व्यवस्थाओं के मोटे रूप से उद्देश्य तो एक ही है- शिक्षार्थी के लिये शिक्षा के अवसर जुटाना, उसकी शिक्षा-प्राप्ति में सहायक बनना।

इस प्रकार संक्षेप में अनौपचारिक शिक्षा की परिभाषा निम्न प्रकार से दी जा सकती है:

अनौपचारिक शिक्षा एक ऐसी शिक्षा-व्यवस्था है जिसके स्वरूप का निश्चय शिक्षार्थी की आवश्यकताओं एवं सुविधाओं के अनुरूप किया जाता है; जो किसी कारणवश शिक्षा से वंचित तथा काम-धंधे में लगे लोगों के लिये भी शिक्षा के अवसर जुटाने का प्रयत्न करती है; जो ऐसा व्यावहारिक आधार प्रस्तुत करती है कि शिक्षा जीवन का सहज अंग बन जाए और जो समाज को सतत शिक्षा की ओर अग्रसर बना सके।

३ स्वरूप

सामान्यतः अनौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा की पूरक होती है क्योंकि औपचारिक शिक्षा-प्राप्त प्रत्येक व्यक्ति को भी अपनी कार्य कुशलता में वृद्धि करने के लिए इसकी आवश्यकता जीवनपर्यन्त होती है। परन्तु ऐसे बालकों या व्यक्तियों के लिए कि जो किन्हीं कारणों से औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सके हैं या नहीं कर सकते, अनौपचारिक शिक्षा एक विकल्प का काम कर सकती है। यदि वे अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करके फिर से औपचारिक शिक्षा में प्रवेश ले लें तो यह शिक्षा उनके लिये विकल्प के स्थान पर पूरक का ही कार्य करेगी। फिलहाल जिस रूप में यह नई व्यवस्था आरम्भ की जा रही है उस रूप में यह उन बालक-बालिकाओं की सहायता के लिए है जो कि आर्थिक या किन्हीं अन्य कारणों से पूर्णकालिक औपचारिक शिक्षा में प्रवेश नहीं कर सके हैं। इस प्रकार अभी जो अनौपचारिक केन्द्र आरम्भ किए जा रहे हैं उनमें प्रवेश लेने वाले शिक्षार्थी निम्नलिखित होंगे :-

(१) ८-१४ आयुवर्ग के वे बालक और बालिकाएँ, जिन्होंने इससे पूर्व विद्यालय में कभी प्रवेश ही नहीं लिया।

(२) ८-१४ आयुवर्ग के वे बालक और बालिकाएँ, जिन्होंने पहले कभी विद्यालय में प्रवेश तो लिया था परन्तु कुछ समय बाद विद्यालय छोड़ दिया और उनकी साक्षरता अब प्रायः निरक्षरता में बदल चुकी है।

आयु-वर्ग

जैसा कि कहा जा चुका है, अनौपचारिक शिक्षा की आवश्यकता बालक, युवा और प्रौढ़ सभी को होती है – औपचारिक शिक्षा प्राप्त किये हुओं को भी, और न किये हुओं को भी। तो, प्रश्न उठता है कि प्रारम्भ में हम केवल ८–१४ आयु-वर्ग पर ही अब क्यों दें और इस आयु-वर्ग (८–१४) में भी प्राथमिकता पहले निरक्षरों को क्यों दें ? हमारे संविधान में यह उल्लेख है कि राज्य १४ वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। यद्यपि संविधान में उल्लिखित समय में हम यह व्यवस्था नहीं कर पाए हैं तथापि प्राथमिकता की दृष्टि से हमारा लक्ष्य यही है कि शीघ्रातिशीघ्र हम यह व्यवस्था करें। निश्चय ही सब आयु-वर्गों में १४ वर्ष तक का आयु-वर्ग इस दृष्टि से सर्वोपरि महत्व का बन गया है। इस आयु तक पहुँचने के पहले ही बहुत से बालक साक्षर होकर विद्यालय छोड़ देते हैं। हमने उनकी आगे की शिक्षा पर अभी तक ध्यान नहीं दिया है। यदि उनकी आगे की शिक्षा पर ध्यान दें तो हो सकता है कि १४ वर्ष तक की आयु के निरक्षर बालक-बालिकाओं को शिक्षित करने पर हमारा धन कम हो जाए, क्योंकि हमारे वित्तीय साधन बड़े सीमित हैं। इसलिए उचित यही समझा गया कि पहले १४ वर्ष तक की आयु के उन बालक-बालिकाओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें जिन्होंने अभी तक शिक्षा-सुविधाओं का कोई लाभ नहीं उठाया है। पहले उन्हें साक्षर और शिक्षित करने का प्रयत्न करें ताकि संविधान के निर्देशों की पालना शीघ्रता से हो सके। वैसे यह अपेक्षणीय अवश्य है कि संविधानानुसार
14 उन सभी के लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए, जिन्हें इसकी आवश्यकता है, चाहे उन्होंने कुछ वर्षों के बाद विद्यालय छोड़ दिया हो, चाहे विद्यालय की शिक्षा पूरी कर ली हो। बात प्राथमिकता की है और प्राथमिकता की दृष्टि से यही उचित लगता है कि हम पहले अपना ध्यान, श्रम और धन १४ वर्ष तक के निरक्षर व्यक्तियों को साक्षर करने में लगाएं और उन्हें ऐसी शिक्षा दें जिससे वे अपना जीवन और अच्छी तरह बिता सकें।

औपचारिक शिक्षा में प्राथमिक स्तर पर हमारा जिन आयु-वर्गों से सम्बन्ध रहता है, वे हैं– ६-११ और ११-१४। सामान्यतः बालक, जब वह लगभग ६ वर्ष का होता है, पहली कक्षा में प्रवेश तब करता है और लगभग ११ वर्ष की आयु के आसपास वह पाँचवी कक्षा उत्तीर्ण करता है। बाद में वह उच्च प्राथमिक शिक्षा अर्थात् छठी में प्रवेश करता है और लगभग १४ वर्ष की आयु में आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करता है। अनौपचारिक शिक्षा में एक नये आयु-वर्ग की व्यवस्था की गई है अर्थात् ८-१४ वर्ष। समझा यह जा रहा कि ६-७ वर्ष का बालक अनौपचारिक शिक्षा से कुछ विशेष लाभ प्राप्त नहीं कर सकेगा। बालक कुछ बड़ा हो जाए तो उसके सीखने-समझने की गति भी कुछ अधिक तेज हो जाती है और वह कम समय में अपना काम पूरा कर सकता है। डॉ० जाकिर हुसैन का कहना था कि यदि देश के पास ८ वर्ष की अनिवार्य शिक्षा देने को बजाय केवल तीन वर्ष की शिक्षा देने के लिए ही धन हो तो मैं सार्वजनीन शिक्षा की व्यवस्था

११-१४ आयु-वर्ग के लोगों के लिए ही करूँगा। उनकी मान्यता थी कि इस आयु-वर्ग में आने के बाद इन तीन वर्षों (११-१४) में बालक की उतनी ही शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है जितनी कि ६ से १४ वर्ष के बालक की आठ साल में। यह इसलिए कि ११ वर्ष का बालक काफी परिपक्व हो जाता है और नई बात बहुत आसानी व शीघ्रता से सीख लेता है। डॉ० ज़ाकिर हुसैन की कही हुई यह बात आज की स्थिति में हमारे बहुत काम की है। इन अनौपचारिक केन्द्रों में जो बालक व बालिकाएँ आएँ उनमें भी प्राथमिकता हम ११-१४ आयु-वर्ग को देंगे ताकि वे कम समय में इस नई व्यवस्था का कहीं अधिक लाभ उठा सकें। यदि केन्द्र के लिए निर्धारित सभी स्थान इस आयु-वर्ग से पूरे न हों तो फिर ११ वर्ष से कम को स्थान दिया जाना चाहिए। हमारा उद्देश्य यह रहे कि पहले हम ८ से १४ वर्ष के छात्र-छात्राओं में से अधिक आयु वालों को प्राथमिकता दें। यदि ८-१४ वर्ष के छात्रों के प्रवेश के बाद भी स्थान रिक्त रहें और उससे कम आयु के छात्र अर्थात् ६-७ वर्ष के भी प्रवेश लेने के इच्छुक हों तो उन्हें यह सुविधा उपलब्ध करा दी जाए। वे केन्द्र पर आएँ, यह भी कम उपलब्धि नहीं होगी, चाहे उन्हें सीखने में अधिक समय लगे। मूल बात यह है कि केन्द्र पर जहाँ तक हो सके अधिक आयु के बिना पढ़े-लिखे बालक-बालिकाएँ आएँ और उनके बाद यदि स्थान शेष रहें तो आयु की सीमा सम्बन्धी मर्यादा में थोड़ी ढील देकर जो भी केन्द्र की सुविधा का लाभ उठाना चाहें, उन्हें यह अवसर उपलब्ध कराया जाए।

गाँवों में बालकों को अपनी सही जन्मतिथि व आयु का ज्ञान कम होता है। अतः ८-१४ का आयु-वर्ग सही माने में ७-१५ का आयु वर्ग भी कहीं-कहीं हो सकता है, क्योंकि ७ वर्ष का बालक अपने को ८ वर्ष का बता सकता है और १५-१६ वर्ष का बालक अपने को १४ वर्ष का कह सकता है। इस तरह से ८-१४ आयु-वर्ग में भी आयु व योग्यता-स्तर की दृष्टि से बहुत-सी भिन्नताएँ हो सकती हैं। कुछ बालक जल्दी सीखेंगे और कुछ देर से। इस तरह से एक समूह होते हुए भी पढ़ने-लिखने में आसानी की बात को ध्यान में रखकर बहुत से समूह बनाने पड़ सकते हैं। जिस प्रकार पहली और दूसरी कक्षा की अविभक्त इकाई में बहुत से समूह बनाने होते हैं, ठीक उसी प्रकार इन अनौपचारिक केन्द्रों में भी कई समूह बनाने पड़ सकते हैं। इन केन्द्रों में वैसे भी प्रवेश की कोई एक तिथि नहीं होगी, वर्ष में कोई कभी भी प्रवेश ले सकेगा। अतः निश्चय ही सम्पूर्ण समूह को कई उपसमूहों में बाँटना ही पड़ेगा। पढ़ने-पढ़ाने की सुविधा की दृष्टि से केन्द्र का यह अनिवार्य अंग ही होगा।

शिक्षार्थी-संख्या

८-१४ आयु-वर्ग के अनौपचारिक केन्द्र पर औसत उपस्थिति ३० और ४० के बीच रहनी चाहिए। संख्या के मामले में प्रारम्भ में कोई अधिकतम सीमा निश्चित करना उचित भी नहीं होगा। यह तो केन्द्र-संचालक की योग्यता पर ही

सकता

निर्भर होगा। वैसे यह तो ध्यान रखना ही होगा कि ऐसा तो न हो कि ८-१४ आयु-वर्ग के पर्याप्त व्यक्ति गाँव-क्षेत्र में उपलब्ध होते हुए भी केन्द्र पर न आएँ और केन्द्र में संख्या १० से कम रह जाए। यदि ऐसी स्थिति हो तो केन्द्र-संचालक को इस पर ध्यान देना चाहिए और संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए। हो सकता है कि प्रत्येक पंजीकृत व्यक्ति प्रतिदिन उपस्थित न रहता हो तो ऐसी स्थिति में केन्द्र पर पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या ३०-४० से अधिक भी हो सकती है। प्रयत्न तो यह रहे कि न्यूनतम उपस्थिति-संख्या केन्द्र पर १० से कम न हो और इससे अधिक केन्द्र-संचालक उसे उतनी ही बढ़ाए जितने तक वह कुशलता-पूर्वक संचालन कर सके।

पाठ्यक्रम

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों में प्रवेश लेने वाले शिक्षार्थी दो प्रकार के हो सकते हैं :-(१) वे शिक्षार्थी जो अनौपचारिक शिक्षा पूरी कर लेने के बाद औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में प्रवेश लेना चाहें, और (२) वे शिक्षार्थी जो अपने दैनिक कार्य को अच्छा बनाने में ही इस शिक्षा का उपयोग करें। सिद्धान्ततः इन दोनों प्रकार के शिक्षार्थियों की शिक्षा-व्यवस्था भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। जो बाद में औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में प्रवेश लेना चाहें उनके लिए तो प्राथमिक शिक्षा का संक्षिप्त पाठ्यक्रम होना चाहिए। निश्चय ही यह पाठ्यक्रम पूर्णकालिक विद्यालयों में चल रहे पाठ्यक्रम का ही लघुरूप होगा, जिसे पूरा करने के बाद
16 छात्र सीधे कक्षा, सामान्यतः पाँचवीं की परीक्षा दे दे व बाद में सीधे कक्षा में नियमित प्रवेश ले लें। जो शिक्षार्थी औपचारिक शिक्षा में प्रवेश न लें उनके लिए व्यावहारिक जीवन पर आधारित ऐसा पाठ्यक्रम हो जिससे वे अपने काम-धन्धे को और अच्छी तरह कर सकें। साक्षरता के साथ-साथ यह पाठ्यक्रम दैनिक जीवन और काम-धन्धे सम्बन्धी अपेक्षाओं पर आधारित होना चाहिए। परन्तु समस्या यह है कि ये दोनों प्रकार के पाठ्यक्रम प्रारम्भ में ही एक साथ किस प्रकार चलाए जाएँ? यह अनुमान लगाना भी कठिन है कि अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र में आने वाले शिक्षार्थियों में से कितने बाद में औपचारिक शिक्षा में प्रवेश करेंगे। प्रारम्भिक वर्षों में उचित यही होगा कि इस आयु-वर्ग के लिए एक सामान्य पाठ्यक्रम ही बनाएँ। इस प्रकार इन केन्द्रों के पाठ्यक्रम की रूपरेखा निम्न प्रकार की हो सकती है :-

१. हिन्दी
२. गणित
३. वातावरण का ज्ञान
४. व्यवसाय से सम्बन्धित ज्ञान।

आदर्श स्थिति तो यह होगी कि हिन्दी व गणित की पुस्तकें भी स्थानीय वातावरण के ज्ञान को आधार बनाकर लिखी जाएँ। किन्तु यह स्थिति शायद एकदम न आ सके। इसमें स्थानीय परिवेश की जानकारी रखने वाले तथा लेखन

में कुशल व्यक्तियों और वित्त की आवश्यकता होगी ताकि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की अपेक्षा के अनुसार अलग-अलग पाठ्यपुस्तक तैयार हो सकें। जब तक यह स्थिति नहीं आती तब तक सारे राज्य के लिए एक या दो पुस्तकें हो सकती हैं। जब तक नई पुस्तकें न बनें तब तक राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल द्वारा प्रकाशित पुस्तकों से काम लिया जा सकता है। वातावरण के ज्ञान के अन्तर्गत स्वास्थ्य, परिवार, नागरिकता, कला व सांस्कृतिक पक्ष पर बल दिया जाना चाहिए। १४ वर्ष तक के बालक और बालिकाएं रात्रि, सायंकाल, प्रातःकाल या मध्याह्न के समय लगभग दो घंटों के लिए केन्द्र पर आयेंगे। अतः यह निश्चित है कि वे इसके अतिरिक्त समय में अपने घर पर या अन्यत्र कोई दूसरा कार्य कर रहे होंगे। कोई कृषि के कार्य में संलग्न होगा तो कोई पशुपालन में, कोई किसी अन्य व्यवसाय में लगा होगा तो कोई अपने घर के दैनिक कार्य में। अनौपचारिक शिक्षा में उनकी रुचि तभी बनी रह सकती है जब कि उन्हें यह आभास हो कि शिक्षा से उनके दैनिक कार्यों में भी कुछ सुधार होता है। इस दृष्टि से यह आवश्यक होगा कि केन्द्र संचालक या कोई अन्य व्यक्ति उन्हें व्यवसाय से सम्बन्धित कुछ बातें बताए। उनके व्यवसाय से सम्बन्धित क्रियात्मक कार्य हो सके तो और भी उत्तम, परन्तु यह फिलहाल कुछ कठिन लगता है। धीरे-धीरे इसकी व्यवस्था की जा सकती है, पर प्रारम्भ में वार्ता या निदर्शन के माध्यम से कुछ शुरुआत की जा सकती है। पशु-पालन में लगे लोगों को पशुओं के रोगों, दूध के संरक्षण, पशुओं की देखभाल आदि के बारे में बताया जा सकता है। इसी प्रकार कृषि में लगे बालकों के लिए बीज, खाद, पानी की मात्रा, फसलों के रोग, ऋण लेने की सुविधाएं आदि की बात काम की हो सकती है। यदि स्वयं अध्यापक (केन्द्र-संचालक) को जानकारी है तो वह स्वयं दे, अन्यथा कृषि अथवा पशुपालन-विभाग में कार्य करने वाले अथवा किसी स्थानीय जानकार व्यक्ति की सेवाओं का उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार अन्य धन्धों के बारे में भी सोचा जा सकता है। 17

स्थानीय वातावरण व धन्धे के सम्बन्ध में कुछ बातें तो सामान्य होंगी, जो सारे राज्य में एक-सी होंगी, जैसे-शरीर-विज्ञान, परिवार-शास्त्र, नागरिक-ज्ञान आदि; पर कुछ बातों में क्षेत्र के अनुसार भिन्नता हो सकती है, जैसे-कला व सांस्कृतिक पक्षों में। स्थानीय इतिहास व स्थानीय भूगोल भी हर स्थान का भिन्न होगा। स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम में कुछ तत्व तो राज्य भर के लिए समान होंगे और कुछ स्थानीय विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए भिन्न-भिन्न होंगे। इसलिए यह आवश्यक होगा कि शिक्षा-विभाग राज्य शिक्षा संस्थान की सहायता से एक सामान्य पाठ्यक्रम की रूपरेखा जारी करे और क्षेत्र या जिलानुसार यह स्वतन्त्रता दे कि वे उसमें अपनी आवश्यकतानुसार यथोचित परिवर्तन-परिवर्द्धन कर सकें। वैसे तो प्रत्येक गांव का अपना अलग पाठ्यक्रम हो सकता है परन्तु फिलहाल हम एक जिले को इकाई मानकर चलें तो अधिक सुविधा होगी। जिला-स्तर पर पाठ्यक्रम-निर्माण-प्रक्रिया के कुछ ऐसे जानकार व्यक्ति भी उपलब्ध हो सकते हैं,

जो स्थानीय आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण कर सकें। एक से अधिक जिलों का भी एक पाठ्यक्रम हो सकता है, जैसे – रेगिस्तानी जिलों की मूल आवश्यकताएँ एक समान हैं, अतः वातावरण व धन्धे के विषयों में कमो-बेश वहाँ एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम रखा जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अनौपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में जहाँ एक ओर एकरूपता रहेगी, वहीं दूसरी ओर लचीलेपन की भी पर्याप्त गुंजाइश रहेगी।

औपचारिक शिक्षा में विषयानुसार पाठ्यपुस्तकें होती हैं परन्तु अनौपचारिक शिक्षा में प्रयत्न यह किया जाएगा कि पाठ्यपुस्तकें कम से कम हों व जहाँ तक संभव हो सके, हिन्दी की पुस्तक के माध्यम से वातावरण और धन्धे का भी कुछ ज्ञान दिया जाए। किसान-क्रियात्मक-साक्षरता-कार्यक्रम इसका एक उदाहरण है। गणित में भी मुख्यतः उन समस्याओं का ही समावेश हो जिनसे शिक्षार्थियों का प्रतिदिन काम पड़ता है। औपचारिक और अनौपचारिक पाठ्यक्रम में सब से बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ औपचारिक शिक्षा में आगे की सीढ़ी अर्थात् आगे की औपचारिक संरचना व उसके पाठ्यक्रम का ध्यान रखा जाता है, वहाँ अनौपचारिक शिक्षा में ८-१४ आयु-वर्ग के विद्यार्थियों के लिए उस पर उतना बल नहीं होता। इस दृष्टि से औपचारिक व अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था में पाठ्यक्रम की भिन्नता होना स्वाभाविक है। औपचारिक शिक्षा-केन्द्र पूर्णकालिक होते हैं और कई वर्षों की शृंखला लिए होते हैं, जबकि अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र अल्पकालिक व कुछ ही वर्षों के लिए होते हैं, इस कारण भी पाठ्यक्रम में भिन्नता निश्चय ही होगी, होनी भी चाहिए।

संक्षेप में, ८-१४ आयु-वर्ग के शिक्षार्थियों के लिए पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि बिना पढ़ा-लिखा व्यक्ति लगभग एक वर्ष की अवधि में मुख्यतः हिन्दी व गणित में पाँचवीं कक्षा तक की योग्यता प्राप्त कर ले। इसी स्तर तक की उसे सामाजिक ज्ञान और सामान्य विज्ञान सम्बन्धी सामान्य जानकारी हो, जो उसके वातावरण और जीवन से सम्बन्धित हो। एक वर्ष की अवधि के बाद यदि शिक्षार्थी पाँचवीं कक्षा की परीक्षा देकर आगे नियमित अध्ययन जारी रखना चाहे तो वह वैसा कर सके। एक स्थिति यह हो सकती है कि शिक्षार्थी छठी कक्षा में औपचारिक विद्यालय में प्रवेश ले ले। दूसरी स्थिति यह हो सकती है कि शिक्षार्थी औपचारिक विद्यालय में प्रवेश न ले और केन्द्र पर ही आगे पढ़ता रहे और वर्ष-दो वर्ष में आठवीं कक्षा तक की तैयारी करे और फिर परीक्षा दे। तीसरी स्थिति यह हो सकती है कि शिक्षार्थी औपचारिक विद्यालयों में प्रवेश ही न ले, परन्तु उसमें अध्ययन के प्रति जिज्ञासा जागृत हो जाए और वह निरन्तर कुछ न कुछ पढ़ता रहे, बिना किसी परीक्षा को दृष्टि में रखते हुए। हमें तीनों स्थितियों का और मुख्यतः अभी पहली और तीसरी को ध्यान में रखकर ही पाठ्यक्रम का निर्धारण करना है और तदनुरूप ही केन्द्र-संचालक को कार्य करना है।

मूल्यांकन

मूल्यांकन शिक्षा के किसी भी कार्य का अविभक्त अंग होता है। इन केन्द्रों पर शिक्षार्थियों का जो मूल्यांकन होगा वह मुख्यतः उनके स्तर-निर्धारण को घोषणा के लिए नहीं वरन् उनके लिए आगे का अध्ययन और सुलभ बनाने के लिए होगा। उचित तो यही होगा कि शिक्षार्थियों की कोई औपचारिक परीक्षा न ली जाए और उन्हें उत्तीर्ण अथवा अनुत्तीर्ण घोषित ही नहीं किया जाए। इसका यह अर्थ नहीं है कि केन्द्र-संचालक यह ज्ञात ही न करे कि शिक्षार्थी की उपलब्धि का स्तर क्या है और उसे आगे बढ़ाने के लिए किस प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है। वैसे भी अब प्रारम्भिक कक्षा के स्तर तक किसी भी कक्षा की परीक्षा देकर आगे की कक्षा में प्रवेश लेने की छूट सभी को दी जा रही है। अतः अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र पर अध्ययन करके शिक्षार्थी औपचारिक शिक्षा में प्रवेश ले सकेगा। उसे विद्यालय में प्रवेश के पूर्व परीक्षा देनी तो पड़ेगी ही, अतः अनौपचारिक केन्द्र के किसी प्रमाण-पत्र की उपयोगिता नहीं के बराबर ही होगी। इस दृष्टि से शिक्षार्थी के लिए अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र के प्रमाण-पत्र की कोई विशेष उपयोगिता नहीं है। अधिक से अधिक यह किया जा सकता है कि जो शिक्षार्थी प्रमाण-पत्र चाहें, उन्हें केन्द्र पर अध्ययन करने का प्रमाण-पत्र दे दिया जाए। यदि शिक्षार्थी को स्तर-निर्धारण सम्बन्धी प्रमाण-पत्र की आवश्यकता हो तो उसके लिए पाँचवीं कक्षा की नियमित परीक्षा देने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। परन्तु अध्यापक को प्रत्येक शिक्षार्थी का प्रगति विवरण अपने उपयोग के लिए रखेगा ही, जिसमें यह भी उल्लेख होगा कि उसने वांछित स्तर प्राप्त किया है या नहीं। इसकी जाँच के लिए जो भी साधन वह उचित समझे, काम में ले, जैसे लिखित जाँच, मौखिक जाँच आदि। परन्तु शिक्षार्थी को यह ज्ञात न हो कि उसकी जाँच हो रही है। इस प्रगति अभिलेख व जाँच से यह ज्ञात हो सकेगा कि कितनी अवधि में कितने शिक्षार्थियों ने वांछित स्तर प्राप्त किया और केन्द्र की उपलब्धि क्या रही?

समय व अवधि

पाठ्यक्रम से जुड़ा हुआ ही एक प्रश्न है — इन केन्द्रों की संचालन-अवधि व समय का। इन अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों का उद्देश्य यह है कि जो बालक व बालिकाएँ अभी तक पढ़ने नहीं गए हैं, उनमें शीघ्रातिशीघ्र पढ़ने-लिखने, हिसाब करने और दैनिक जीवन से सम्बन्धित अन्यान्य उपयोगी बातों को अच्छी प्रकार से समझने और अपने दैनिक कार्य को और अच्छी तरह से करने की क्षमता आ जाए। देश में चल रहे ऐसे विविध केन्द्रों और राजस्थान में अजमेर शहर में चल रही रात्रि पाठशालाओं का यह अनुभव रहा कि ११-१४ आयु-वर्ग के शिक्षार्थी में ऊपर लिखी क्षमताएँ ५०० घंटों में आ सकती हैं। यदि शिक्षार्थी दो घंटे रोज केन्द्र पर आएँ तो २५० कार्य-दिवसों में (जो १ वर्ष की अवधि में मिल जा सकते हैं) उक्त अपेक्षाओं की पूर्ति के उद्देश्य से बनाया गया पाठ्यक्रम पूरा किया जा सकता है।

इससे कम आयु-वर्ग के बच्चों को कुछ अधिक समय भी लग सकता है, और ११-१४ आयु-वर्ग में भी कुछ छात्र ऐसे हो सकते हैं जिन्हें उसे पूरा करने में एक वर्ष से अधिक समय लगे। इसी प्रकार निम्नतर आयु-वर्ग के कुछ छात्र ऐसे हो सकते हैं जो उसी निर्धारित अवधि में वह पाठ्यक्रम पूरा कर लें। जहाँ एक ओर शिक्षार्थी की क्षमता पर यह सब निर्भर होगा, वहाँ दूसरी ओर अध्यापक की रुचि व लगन पर भी। फिर भी सामान्यतः २५० कार्य-दिवस अर्थात् १ वर्ष की अवधि को आधार मानकर चला जा सकता है, जिसके अनुसार प्रत्येक शिक्षार्थी दो घंटे प्रतिदिन केन्द्र पर अध्ययन करने में संलग्न रहे।

औपचारिक शिक्षा में समय की पूरी पाबन्दी होती है। वहाँ प्रत्येक छात्र को विद्यालय आरम्भ होते ही आना अनिवार्य होता है। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र में चूंकि शिक्षार्थी की सुविधा पर अधिक ध्यान दिया जाता है, अतः यह अनिवार्य नहीं होता कि प्रत्येक शिक्षार्थी केन्द्र आरम्भ होते ही उपस्थित हो जाए। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि केन्द्र आरम्भ होने के समय कोई आए ही नहीं। प्रयत्न तो यही रहे कि केन्द्र आरम्भ होने के समय ही सभी शिक्षार्थी आ जाएँ परन्तु कोई न आ सके तो उसका बुरा न माना जाए। इसका अर्थ यह भी हुआ कि केन्द्र को दो घंटों से कुछ अधिक समय २½ अथवा २¾ घंटे तक खुला रखा जाए ताकि देर से आने वालों के समय की भी पूर्ति हो जाए। परन्तु यहाँ विशेष ध्यान रखने की बात यह है कि अध्यापक हमेशा निश्चित समय पर केन्द्र पर आ ही जाए। यदि ऐसा नहीं होगा तो शिक्षार्थी उत्साह बनाए नहीं रख सकेंगे और उनकी संख्या निरन्तर कम होती जाएगी।

केन्द्र के समय का निर्धारण भी अध्यापक व शिक्षार्थी दोनों की सम्मिलित सुविधाओं को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। यह समय कोई भी हो सकता है– प्रातःकाल, दोपहर, सायंकाल अथवा रात के समय। स्थानीय सुविधा के अनुसार, निर्धारित समय में बाद में आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है, जैसे — फसल काटने के दिनों में किसी स्थान पर यह समय रात्रि का हो सकता है तो अन्य दिनों में प्रातःकाल अथवा सायंकाल। एक ही समय वर्ष भर भी रह सकता है। समय का निश्चय तो स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही किया जाना चाहिए। इसकी सूचना परिवीक्षण-अधिकारी को पूर्व रूप से दे दी जानी चाहिए। जहाँ पर औपचारिक विद्यालय को अवधि कम करके वहीं के अध्यापकों द्वारा वहीं अनौपचारिक केन्द्र भी चलाए जाते हों, वहाँ सुविधा की दृष्टि से यह अधिक उपयुक्त होगा कि औपचारिक विद्यालय के कार्य-समय की समाप्ति और अनौपचारिक केन्द्र के चलने के समय के बीच ज्यादा अन्तर न रहे ताकि अध्यापक को केन्द्र-संचालन में सुविधा रहे। यदि किन्हीं सम्बन्धित अध्यापकों को ऐसा लगे कि यह निर्धारित समय उपयुक्त नहीं रहेगा तो वे स्थानीय आवश्यकता के अनुसार केन्द्र का समय अलग से निश्चित कर सकते हैं। बात अध्यापक व शिक्षार्थी दोनों की सुविधा की है और इस मर्यादानुसार जो भी समय उपयुक्त लगे उसे निश्चित किया जा सकता है।

एक ओर यहां इस बात पर बल नहीं दिया गया है कि प्रत्येक शिक्षार्थी केन्द्र आरम्भ होने से उपस्थित हो जाए, उसी प्रकार दैनिक उपस्थिति पर भी यहां उतना बल दिया जाना उचित नहीं होगा जितना कि औपचारिक शिक्षा में दिया जाता है। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि शिक्षार्थी नियमित नहीं रहे। हमारा प्रयत्न तो यह रहे कि जिस किसी भी शिक्षार्थी ने अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र में प्रवेश लिया है वह निर्धारित समय पर आए और प्रतिदिन आए। परन्तु यदि कारणवश वह रोज नहीं आ सके या किसी दिन अनुपस्थित रह जाए तो उसे बुरा न माना जाए। औपचारिक शिक्षा में अनुपस्थिति को हेय दृष्टि से देखा जाता है परन्तु अनौपचारिक शिक्षा में ऐसा नहीं होता। यह शिक्षा-व्यवस्था शिक्षार्थी की सुविधा को सब से पहले ध्यान में रखती है। यदि शिक्षार्थी सप्ताह में प्रतिदिन आए तो स्वीकार, कुछ सप्ताह में चार दिन आएं तो स्वीकार, कुछ तीन दिन और कुछ अपनी सुविधानुसार इससे भी कम दिन आएं तो वह भी स्वीकार। कहना न होगा कि शिक्षार्थियों के दल भी फिर इसी प्रकार से बन जाएंगे और निश्चय ही उनमें से कुछ को पाठ्यक्रम पूरा करने में एक वर्ष से अधिक समय लगेगा। स्पष्ट है कि फिर प्रत्येक व्यक्ति का दिन निश्चित हो जाएगा। यदि कुछ शिक्षार्थी दो-तीन दिन के बाद आते हैं तो केन्द्र में आने वाले शिक्षार्थियों की संख्या भी उसी अनुपात में बढ़ जाएगी। विविध विकल्पों से पूर्ण व्यवस्था ही (अनिवार्यता-वाली व्यवस्था नहीं) चलेगी। जहां जैसा कार्य चले उसी के अनुरूप वहां व्यवस्था करनी होगी।

शिक्षार्थियों की उपस्थिति के बारे में कई विकल्पों की जो चर्चा ऊपर की गई है उसका अर्थ अव्यवस्था नहीं है कि कोई भी शिक्षार्थी जब इच्छा हो तब आए। उसे यों कहना चाहिए कि सब ने अपनी-अपनी सुविधा पर विचार किया है और निश्चय किया है कि सप्ताह में रोज आ सकेंगे या कुछ कम या अधिक दिन आ सकेंगे। अध्यापक को उनके निश्चय की सूचना है और उसी के अनुसार उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई है। नवीनीकरण को समझने के लिए यह स्पष्टता आवश्यक है। नवीनीकरण का अर्थ व्यवस्था-हीनता कदापि न हो। हमारा प्रयत्न तो यही होगा और होना चाहिए कि प्रत्येक शिक्षार्थी प्रतिदिन उपस्थित रहे, परन्तु यदि ऐसा संभव न हो तो वैकल्पिक व्यवस्थाएं की जाएं ताकि केन्द्र का संचालन सुचारु रूप से हो सके और सभी शिक्षार्थियों को लाभ मिलता रहे।

21

स्थान

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र में, उपस्थिति की दृष्टि से, केन्द्र के स्थान का बहुत महत्व है। प्रारंभ में लगभग सभी केन्द्र स्थानीय विद्यालय में ही चलेंगे क्योंकि वहां केन्द्र से सम्बन्धित सभी साज-सामान पहले से ही उपलब्ध होता है। पर यह अनिवार्य नहीं है कि वे विद्यालय-भवन में ही चलें। यहां भी मुख्य बात शिक्षार्थियों की सुविधा की है। यदि विद्यालय-भवन गांव से दूर है अथवा एक कोने में है तो रात्रि को बालक-बालिकाओं को वहां जाने और वहां से लौटने में

असुविधा हो सकती है। हो सकता है विद्यालय-भवन में बिजली की व्यवस्था न हो और किसी अन्य भवन में यह सुविधा उपलब्ध हो। और भी सुविधा-असुविधा की कई बातें हो सकती हैं। केन्द्र के लिए स्थान के चयन के पीछे मुख्य दृष्टि यही होगी कि उस स्थान पर अधिक से अधिक शिक्षार्थी निर्धारित समय पर आ सकें, चाहे वह विद्यालय-भवन हो, गाँव की चौपाल हो अथवा गाँव के किसी व्यक्ति द्वारा इस निमित्त दिया गया कमरा या भवन हो। केन्द्र के स्थान का निश्चय अध्यापक और गाँव वाले मिलकर करेंगे कि कौनसा स्थान अधिक उपयुक्त रहेगा। स्थान का निश्चय करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि किसी विशेष स्थान के कारण किसी जाति अथवा समुदाय के लोगों में केन्द्र के प्रति उत्साह कम नहीं हो जाए। जहाँ तक हो सके वह कोई सार्वजनिक स्थान हो तो अधिक उपयुक्त होगा।

केन्द्र-संचालक

अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था के स्वरूप की जो कल्पना ऊपर की गई है उसमें बहुत ही लचीलापन है—पाठ्यक्रम में, समय में, उपस्थिति में, केन्द्र के स्थान में, आयु-वर्ग में, अवधि में, सीखने की गति में, समूहों की संख्या व उनके निर्माण में और अन्य सभी बातों में। एकरूपता के ढाँचे वाली शिक्षा में ढले हुए प्रौढ़ के अध्यापक के लिए इस स्वरूप को आत्मसात करके उसके अनुसार कार्य करना, और स्वयं सोचकर सुविधानुसार उसमें परिवर्तन करते रहना, एकाएक कठिन हो
22 सकता है। औपचारिक शिक्षा में लगभग सभी बातें ऊपर से निर्धारित हैं, उनमें वह स्वयं कोई परिवर्तन नहीं करता, उसके लिए वह ऊपर के अधिकारियों के आदेशों की प्रतीक्षा करता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि आज का अध्यापक, जिस प्रकार की शिक्षा उसने पाई है, जो शिक्षा-व्यवस्था उसने देखी है, उसी के अनुसार आगे भी कार्य करता रहता है। परन्तु अनौपचारिक-शिक्षा-व्यवस्था एक नई संकल्पना है। इसका स्वरूप स्थानीय आवश्यकतानुसार निर्धारित होता है, अतः कोई निश्चित प्रक्रिया अपनाकर हर स्थान की आवश्यकताओं को पूर्ति नहीं कर सकते। उसमें अध्यापक की स्वयं की विचार-शक्ति ही अधिक काम करेगी। औपचारिक शिक्षा की तरह यदि वह आदेशों की प्रतीक्षा करता रहे, उसे मात्र आज्ञाओं से चलने वाला कार्य समझता रहे तो अनौपचारिक शिक्षा-व्यवस्था सफल नहीं हो सकती। अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र चलाने के लिए सबसे पहले अध्यापक को औपचारिक शिक्षा-संचालन सम्बन्धी अपेक्षाओं को लेकर बनी अपनी आदतों से मुक्त पानी होगी। यदि ऐसा नहीं हुआ तो वे आदतें बार-बार उसकी गति में बाधक बनकर खड़ी हो जाया करेंगी और केन्द्र पर शिक्षार्थियों की उपस्थिति और उसकी स्वैच्छिक प्रगति में अवरोध का कार्य करेंगी।

अनौपचारिक केन्द्रों में शिक्षार्थी की आवश्यकता व सुविधा पर सर्वोपरि बल दिया जाता है, अन्य सारी बातें गौण होती हैं। इस कारण शिक्षण-विधियों और अनुशासन भी औपचारिक विद्यालयों से यहाँ भिन्न होगा। यहाँ सीखे अध्यापन

पर जोर न होकर शिक्षार्थियों के अनुकूल समस्याएँ प्रस्तुत करके उन्हीं के द्वारा उन्हें हल कराने पर अधिक बल होगा। इस व्यवस्था में स्वाध्याय ही शिक्षण का मुख्य आधार बनेगा। कक्षा का वातावरण औपचारिक नहीं होगा और न अध्यापक ऐसे अनुशासन की अपेक्षा करेगा जैसा कि वह औपचारिक विद्यालयों में करता है। यह भी हो सकता है कि क्रियात्मक शिक्षा-प्रसंग में कुछ छात्र दूसरे छात्रों के लिए अध्यापक का कार्य कर, जैसे – कृषि कार्य में प्रवीण कोई छात्र दूसरे छात्रों को कृषि की उन्नत विधियाँ बताए।

संक्षेप में यदि कहा जाए तो यह कि अनौपचारिक शिक्षा में अध्यापक की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। उसके स्तर पर तत्परता, निर्णय, आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन, लगन, परिश्रम आदि गुणों के उपयोग की बहुत अधिक संभावनाएँ हैं, अवसर हैं।

●

४ संगठन

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना राजस्थान में सन १९७४-७५ से की गई है और आने वाले वर्षों में इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होगी। प्रत्येक जिले में शहरी व ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में मिलाकर कुल ५० केन्द्र खुले। इन केन्द्रों को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए आवश्यक है कि ये केन्द्र वांछित स्थानों पर खुलें, उनमें अच्छे केन्द्र-संचालक नियुक्त हों, उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था हो, उन्हें समुचित साधन-सामग्री समय पर उपलब्ध हो और इन केन्द्रों का प्रभावी परिवीक्षण व अनुवर्तन हो। यदि इन बातों पर पूरा ध्यान दिया जाता है तो निश्चय ही केन्द्र व्यवस्थित रूप से चलेंगे और शिक्षा का प्रसार हो सकेगा।

केन्द्रों का चयन

सभी हाल ही में तृतीय शैक्षिक सर्वेक्षण सम्पन्न हुआ है, जिसमें प्रत्येक गांव, नगर, उपनगर आदि में आयु-वर्ग के अनुसार निरक्षर बालक-बालिकाओं की गणना हुई है। यह भी इस सर्वेक्षण के माध्यम से ज्ञात किया गया है कि

पिछड़े वर्ग के कितने लोगों को शिक्षा सुलभ नहीं हो पाई है। जिले में केन्द्र या केन्द्रों के स्थान निश्चित करने में यह सर्वेक्षण बहुत लाभदायक सिद्ध होगा। प्राथमिकता की दृष्टि से उन स्थानों का निश्चय किया जा सकता है जहां ८-१४ आयु-वर्ग के अधिक बालक-बालिकाएं निरक्षर हैं। जब इन स्थानों का निश्चय हो जाए तो फिर यह देखना होगा कि किस क्षेत्र, नगर या पंचायत समिति में ऐसे स्थानों की संख्या अधिक है, ताकि उस क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया जाए। यदि ऐसे गांव अधिक दूर-दूर तक या बहुत-सी पंचायत समितियों में बिखरे हों तो बिखरे-बिखरे प्रयत्नों के स्थान पर किसी एक या दो पंचायत समितियों पर ही पहले ध्यान केन्द्रित करना उचित होगा। वैसे धीरे-धीरे आने वाले वर्षों में सभी ऐसे स्थानों का समावेश हो जाएगा। परन्तु, पहले उन्हीं स्थानों को चुना जाए जो सघन हों और किसी पंचायत समिति विशेष में हों ताकि कार्य करने में सुविधा रहे। पहले ऐसे गांवों का चुनाव किया जाना भी उचित होगा जहां एक से अधिक केन्द्र खोलने की संभावना हो।

चूंकि जिले में सभी गांवों, कस्बों अथवा नगरों में अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र एक साथ स्थापित नहीं किए जा सकते, अतः स्थानों का चुनाव तो सुविधानुसार ही किया जाना चाहिए। यदि केन्द्रों की संख्या सीमित हो और एक से अधिक पंचायत समितियों में यह कार्य प्रारम्भ किया जा सकता हो तो प्राथमिकता उस समिति क्षेत्र को दी जानी चाहिए जहां लोगों में अनौपचारिक शिक्षा के प्रति अधिक उत्साह हो और उस क्षेत्र के प्रधान, विकास अधिकारी, शिक्षा-प्रसार-अधिकारी उसमें अधिक रुचि लें। यह भी ध्यान रखना उचित होगा कि उस क्षेत्र में पहले प्रौढ़-शिक्षा का कार्य असफलता के कारण बन्द न करना पड़ा हो; क्योंकि हो सकता है, पूर्व धारणाओं के कारण उनका नये कार्य-क्रम में उत्साह कम हो। वैसे यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण तो नहीं है क्योंकि यदि केन्द्र स्थापित हो जाए और वहां लोगों को उसके कार्यक्रम में लगे कि वह गांव के लिए उपयोगी है तो पूर्व-धारणाएं समाप्त भी हो सकती हैं। फिलहाल, केन्द्र के स्थान के चयन में निरक्षर लोगों की संख्या, स्थानीय जनता का उत्साह और क्षेत्र की सघनता ही मुख्य तत्त्व होंगे।

केन्द्रों के स्थान के चयन के पूर्व स्थानीय लोगों से सम्पर्क भी आवश्यक होगा। उन्हें केन्द्रों की स्थापना का महत्त्व बताना होगा, उनकी आवश्यकताएं ज्ञात करनी होंगी और उन्हें यह आश्वासन देना होगा कि केन्द्र में आने के बाद उनके पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन अपने घर में पहले से अच्छा कार्य कर सकेंगे। इस कार्य में स्थानीय जन-नेता, शिक्षित व्यक्ति, अन्य विभागों के व्यक्ति आदि की सहायता ली जानी चाहिए। जब केन्द्र के लिए स्थान अर्थात् गांव, नगर, उपनगर आदि का निश्चय हो जाए तो अगला काम होगा – केन्द्र की स्थापना का। केन्द्र की स्थापना विद्यालय-भवन, चौपाल या अन्य किसी स्थान पर सुविधाओं को दृष्टि में रखते हुए की जा सकती है।

केन्द्र-संचालक का चयन

केन्द्र की स्थापना के साथ एक महत्वपूर्ण बिन्दु जुड़ा हुआ है और वह है– केन्द्र-संचालक का। कोई भी केन्द्र एक अच्छे संचालक के बिना चालू करना उचित नहीं है। प्रश्न यह है कि अनौपचारिक शिक्षा के इस केन्द्र का संचालक किसे बनाया जाए। औपचारिक विद्यालयों के लिए न्यूनतम शैक्षिक व प्रशिक्षणिक योग्यताएँ निर्धारित हैं, और उनको प्राप्त किए बिना कोई भी अध्यापक-पद पर नियुक्त नहीं हो सकता। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक की न्यूनतम योग्यता सैकण्डरी व एस० टी० सी० प्रशिक्षण है। वैसे तो प्रायः अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों के संचालक ये अध्यापक ही होंगे, परन्तु इनकी भी कई सीमाएँ हैं। जहाँ औपचारिक विद्यालय को समयावधि कम की जाएगी वहाँ तो इन केन्द्रों पर जाना करना उनके लिए अनिवार्य होगा। किन्तु, जहाँ अतिरिक्त पारिश्रमिक की व्यवस्था हो, वहाँ हो सकता है कि कुछ अध्यापक इन केन्द्रों के संचालक न बनना चाहें या इन केन्द्रों को चलाने के लिए किसी विशेष स्थान पर उनमें रुचि व लगन का अभाव हो। ऐसी स्थिति में यह निश्चित करके चलना कि केन्द्र-संचालक वहाँ का नियमित अध्यापक ही होगा, उचित नहीं है। दृष्टि मुख्यतः इस बात पर रहे कि नये कार्यक्रम को रुचि, लगन व परिश्रम-पूर्वक सम्पन्न करने वाला व्यक्ति मिले – चाहे वह अध्यापक हो अथवा गाँव का कोई अन्य शिक्षित व्यक्ति हो। कई स्थानों पर सत्र ७४-७५ में स्थानीय व्यक्तियों को प्राथमिकता दी गई, इस कारण कि वे उसी गाँव के होने से विकास में अधिक रुचि लेते हैं, इस कारण भी कि दिन में वे अपना काम करते हैं, अतः रात्रि को ४०-५० रु० मासिक पारिश्रमिक पर रुचि पूर्वक काम कर लेते हैं, साथ ही इस कारण भी कि गाँव के लोगों से उनका अधिक हेल-मेल होता है। बहरहाल, कारण कुछ भी हो, यह कोई विवाद का विषय नहीं होना चाहिए कि केन्द्र-संचालक अध्यापक हो बने या स्थानीय शिक्षित व्यक्ति। वह व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जो शिक्षार्थियों को रुचिपूर्वक पढ़ाए। यदि किसी स्थानीय व्यक्ति का चुनाव किया जाता है तो उसके लिए प्रशिक्षण-योग्यता पर कोई बल नहीं दिया जाना चाहिए। अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र चलाने के लिए उसे अल्पकालीन प्रशिक्षण दे दिया जाएगा। यह प्रशिक्षण तो अध्यापकों के लिए भी आवश्यक होगा। यदि किसी केन्द्र पर स्थानीय महिला की नियुक्ति की जाती है तो उसके लिए आठवीं कक्षा उत्तीर्ण योग्यता भी पर्याप्त मानी जानी चाहिए। आदिवासी क्षेत्रों में अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों के लिए आठवीं कक्षा उत्तीर्ण आदिवासी युवक-युवतियाँ उपलब्ध हों तो उन्हें प्राथमिकता देना अधिक उपयुक्त होगा।

26

प्रशिक्षण

जिन व्यक्तियों की केन्द्र-संचालक के रूप में नियुक्ति की जाएगी उनके लिए अनौपचारिक शिक्षा का प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक होगा। प्रशिक्षण में सबसे पहला कार्य होगा कि उनके सामने इस नई शिक्षा-व्यवस्था की संकल्पना स्पष्ट

की जाए ताकि जो अध्यापक परम्परित ढंग से प्रशिक्षित हैं वे उस लीक से अलग हट कर सोचना आरम्भ करें। यदि संकल्पना व आवश्यकता भली-प्रकार स्पष्ट हो जाती है तो फिर आगे के कार्य के बारे में मार्ग अपने आप प्रशस्त हो जाएगा। शिक्षण की विधियां अध्यापक स्वयं सोच लेगा और नई समस्याएं आने पर वह अपने ढंग से नया मार्ग भी निकाल लेगा। इस प्रशिक्षण में अध्यापक में ऐसी योग्यता का विकास किया जाना चाहिए जिससे वह अपना रास्ता स्वयं निकाल सके। प्रशिक्षण में वार्ताओं (भाषणों) का स्थान कम रहे, चर्चाओं और निदर्शनों का ज्यादा। यदि प्रशिक्षण के दौरान ही समस्याओं को स्वयं हल करने की स्थितियां पैदा की जाएं तो सर्वोत्तम होगा। सदस्य व्यक्ति प्रशिक्षण के लिए रहें, पर प्रशिक्षणार्थियों को यह आभास न हो कि कौन संदर्भ व्यक्ति की तरह कार्य कर रहा है। मिल कर सोचें और रास्ता निकालें, संकल्पनाएं स्पष्ट करें, संभावित कठिनाइयों पर विचार करें और हल के विकल्प सोचें। संदर्भ व्यक्ति कार्य की समाप्ति पर प्रतिदिन अलग से मिलें, दिन की कार्यवाही पर विचार करें और अगले दिन के लिए योजना बनाएं और इसी प्रकार से प्रशिक्षण चलता रहे। प्रशिक्षण में बिना शोषक स्पष्ट किए आवश्यकता, संकल्पना, स्वरूप, संगठन, समस्याएं आदि सभी विषयों पर चर्चा हो जाए। प्रशिक्षण समाप्त होने पर प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को यह अनुभव हो कि उसने प्रशिक्षण की परम्परित विधि से कोई नई विधि पर कार्य होते देखा है और वह पहले से अधिक सशक्त व सूझ-बूझ वाला बन कर जा रहा है। नई व्यवस्था को दृढ़ करने के लिए प्रशिक्षण में यदि प्रतिदिन के विचार-विमर्श का सार दूसरे दिन नई कार्यवाही आरम्भ होने के पूर्व सुनाया जाए और अन्त में चर्चांकित या प्रकाशित करके बांटा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा।

केन्द्र-संचालकों का प्रशिक्षण तो जिला-स्तर पर ही सम्भव हो सकेगा। यदि केन्द्रों की संख्या अधिक है तो यह प्रशिक्षण एकाधिक भागों में आयोजित किया जा सकता है। जिला स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा से सम्बन्धित कई अधिकारी अध्यापक होंगे, जैसे-जिला शिक्षा अधिकारी, वरिष्ठ उपजिला शिक्षा अधिकारी, आयोजना अधिकारी, परिवीक्षक आदि। इन व्यक्तियों का प्रशिक्षण शिक्षा विभाग द्वारा आयोजित किया जाएगा। शिक्षा विभाग यह प्रशिक्षण कार्य राज्य शिक्षा संस्थान अथवा राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के माध्यम से आयोजित करा सकता है। राज्य स्तर पर प्रशिक्षित व्यक्ति बाद में जिला स्तर पर संदर्भ व्यक्तियों का कार्य करेंगे।

संचालक का दायित्व

प्रशिक्षण के बाद केन्द्र-संचालकों का दायित्व होगा कि वे केन्द्र का भली प्रकार से संचालन करें। वे अपने केन्द्र से सम्बन्धित क्षेत्र का सर्वेक्षण करने व निरक्षर व्यक्तियों का पता लगाएंगे। उनकी आवश्यकताएं ज्ञात करेंगे जिसमें उनके व्यवसाय व उससे सम्बन्धित कठिनाइयां भी सम्मिलित होंगी। इस सर्वेक्षण

से क्षेत्र की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं का ज्ञान होगा। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह सर्वेक्षण कोई तकनीकी सर्वेक्षण न होकर साधारण-सी बातों पर आधारित होगा। यह मौखिक भी हो सकता है, जैसे-गाँव वालों से बात करके उनकी आवश्यकताओं का पता लगाया जाए। आवश्यकताएँ ज्ञात होने के बाद उनकी पूर्ति के उपाय सोचे जाएँगे और यह भी ज्ञात किया जाएगा कि उन्हें हल कराने में किन स्थानीय व्यक्तियों से सहायता ली जा सकती है, जैसे-खण्ड-सेवक, कृषि अधिकारी, पशुपालन अधिकारी, निकट के बैंक का कर्मचारी या कोई अन्य स्थानीय जानकार व्यक्ति आदि। अनौपचारिक शिक्षा में सारी समस्याएँ केन्द्र का संचालक अध्यापक हल कर ले यह आवश्यक नहीं है, अतः दूसरों की सहायता की व्यवस्था करना भी उसका एक कार्य होगा।

जहाँ तक हिन्दी, गणित व वातावरण के सामान्य ज्ञान का प्रश्न है, केन्द्र संचालक एक सक्षम व्यक्ति होगा और प्रयत्न करेगा कि निश्चित अवधि में शिक्षार्थी आवश्यक कुशलताएँ अर्जित कर लें। वह शिक्षार्थियों के लिए प्रेरणा का स्रोत होगा ताकि वे, किसी अत्यावश्यक कार्य के अलावा, केन्द्र से अनुपस्थित न रहें। वह केन्द्र पर आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करेगा, और यदि वहाँ के विद्यालय में वह सामग्री उपलब्ध है तो उसका पूरा उपयोग करेगा।

वह गाँव वालों से अथवा उस क्षेत्र के लोगों से जहाँ से कि शिक्षार्थी आते हैं, निरन्तर सम्पर्क रखेगा ताकि उनकी आवश्यकताओं का उसे भान होता रहे। उसका व्यवहार गाँव वालों और शिक्षार्थियों दोनों से सहानुभूति लिए हुए होगा ताकि शिक्षार्थी अपनी कठिनाइयाँ या आवश्यकताएँ बताने में संकोच न करें और हमेशा उससे मार्ग-दर्शन लेते रहें। केन्द्र-संचालक (अध्यापक) के बहुत से अन्य कार्य भी गिनाए जा सकते हैं। हमारा उद्देश्य कोई सूची बनाना नहीं है, क्योंकि कार्य व उनकी बारीकियाँ आवश्यकतानुसार बदल भी सकती हैं। मुख्य बात यह है कि शिक्षार्थियों को केन्द्र में रुचि बनी रहे तथा वे पर्याप्त संख्या में केन्द्र से लाभ उठाएँ। अवश्य ही ऐसी सम्पूर्ण व्यवस्था करना केन्द्र-संचालक का दायित्व होगा।

साधन-सामग्री

८-१४ आयु वर्ग के छात्रों को हिन्दी गणित तथा वातावरण (सामाजिक और प्राकृतिक दोनों) का ज्ञान देने के लिए कुछ साधन-सामग्री की भी आवश्यकता होगी जिनमें चार्ट, नक्शे, मॉडल, चित्र आदि सम्मिलित हैं। यह सामग्री स्थानीय प्राथमिक/उच्च प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालय से प्राप्त की जा सकती है। यदि स्थानीय रूप से उपलब्ध न हो तो उसकी अलग से व्यवस्था करनी पड़ेगी। साधन के रूप में रेडियो बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जहाँ यह उपलब्ध हो सके, इसका अवश्य उपयोग किया जाना चाहिए। रेडियो-प्रसारण के माध्यम से छात्रों का ज्ञान आसानी से दिया जा सकता है और बाद में उस पर चर्चा आयोजित की जा सकती है।

इन केन्द्रों पर अधिकतर वे शिक्षार्थी आएंगे जो अपनी आर्थिक स्थिति के कारण दिन में अन्यत्र काम करते होंगे। उन्हें पाठ्यपुस्तकें, स्लेटें, पेंसिलें, तथा अभ्यास-पुस्तकें भी राज्य द्वारा दिए जाने का प्रावधान किया गया है। यह सामग्री भी केन्द्र पर यथा समय पहुंच जानी चाहिए। यदि उसके क्रय व वितरण में देरी हुई तो केन्द्र पर शिक्षार्थियों की संख्या कम हो जाती है और केन्द्र-संचालक का भी मनोबल शिथिल हो सकता है। जिला शिक्षा प्रशासन के लिए यह आवश्यक होगा कि उस सामग्री को पहुंचाने में तत्परता दिखाए। केन्द्र पर सामग्री के पहुंच जाने के बाद उसका शीघ्र वितरण होना चाहिए ताकि जिनके लिए वह स्वीकृत हुई है, वे पूरी तरह से उसका लाभ उठा सकें।

कार्यक्रम

गांव में सायंकाल के समय बच्चे वैसे ही किसी केन्द्रीय स्थान पर खेलने अथवा कहानी सुनने के उद्देश्य से एकत्रित होते हैं। केन्द्र की स्थापना के समय इस समूह का उपयोग किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के समय इस समूह में आए बालकों से सम्पर्क करें, उन्हें कहानियां सुनाएं या खेल खिलाएं। धीरे-धीरे इन बालकों से उसका सम्पर्क बढ़ेगा। कुछ समय के बाद उन्हें पढ़ने-लिखने को प्रेरित किया जा सकता है। शाम को एकत्रित होने वाले समूह को भजन-कीर्तन मंडली का रूप भी दिया जा सकता है, बाद में धीरे-धीरे उनमें पढ़ने के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की जा सकती है। प्रारम्भ से ही उन्हें लगे कि अध्यापक से सम्पर्क रुचिकर होता है तो केन्द्र का काफी कार्य सरल बन जाएगा।

हिन्दी व गणित का शिक्षण दैनिक जीवन में काम आने वाले शब्दों और हिसाब की समस्याओं से आरम्भ होगा। वातावरण का ज्ञान मुख्यतः क्षेत्र के भूगोल व इतिहास से सम्बद्ध करके बातचीत के आधार पर दिया जाएगा। शिक्षण की जो भी सहायक-सामग्री उपलब्ध होगी उसकी सहायता से नया ज्ञान सुलभ करने का प्रयत्न करना उचित होगा। गांव में जो भी उत्सव मनाए जाते हैं, उन्हें अनौपचारिक केन्द्रों में भी उत्साहपूर्वक मनाया जाना चाहिए। यदि ऐसे अवसरों पर चर्चा, भजन-कीर्तन आदि का आयोजन किया जाए तो शिक्षार्थियों की रुचि के साथ-साथ गांव वालों की रुचि भी बढ़ेगी। इन केन्द्रों में जब व्यवसाय, स्वास्थ्य अथवा किसी अन्य उपयोगी विषय पर किसी बाहर के व्यक्ति की वार्ता आयोजित हो तो उसमें गांव वालों को भी आमन्त्रित किया जाए तो उत्तम होगा। जहां केन्द्र पर रेडियो की व्यवस्था हो सके, वहां रेडियो-प्रसारणों का उपयोग शिक्षण में प्रबन्ध किया जाना चाहिए। शिक्षार्थियों के लिए कभी भ्रमण का आयोजन किया जा सके तो उन्हें स्थान विशेष पर जाकर प्राकृतिक दृश्य, ऐतिहासिक स्थान या वास्तविक स्थिति से परिचित होने का अवसर मिलेगा। शिक्षार्थियों को राज्य व देश की गतिविधियों का सामान्य परिचय भी मिलते रहना चाहिए। समाचार-पत्रों और अध्यापक की बातचीत से यह कार्य आसानी से सम्पन्न किया जा सकता है। यदि इन केन्द्रों पर अध्ययन करने से शिक्षार्थी

देश और समाज की वास्तविक स्थितियों से परिचित हो सकें और स्थिति में सुधार लाने की ओर धीरे-धीरे प्रवृत्त हो सकें तो यह केन्द्र की सर्वोपरि उपलब्धि होगी। यह कार्य तभी अच्छी तरह हो सकता है जबकि अध्यापक शिक्षार्थी में प्रश्न पूछने, जिज्ञासा व्यक्त करने और वर्तमान बुराइयों के प्रति असंतोष की भावना को बलवती बनाने का प्रयास कर सके। कार्य कठिन तो लगता है पर अध्यापक अपनी बात भाषणों से न थोपकर शिक्षार्थी को स्वयं सोचने के लिए प्रेरित कर सकता है, ताकि उसकी जिज्ञासा-वृत्ति जाग्रत हो सके तथा बनी रह सके। यदि यह वृत्ति बनी रहे तथा बनती रहे तो सुधार की भावना बाद में—चाहे वह १४ वर्ष की आयु के बाद में ही हो, कभी न कभी पनप सकती है। निश्चय ही केन्द्र पर अध्यापक लम्बे भाषण नहीं देगा परन्तु ऐसे कार्यक्रम प्रस्तुत करेगा जिसमें शिक्षार्थी स्वयं चर्चा करें और अध्यापक नियामक का कार्य करे।

केन्द्र की अन्य बातों की तरह उसके कार्यक्रम भी लचीले होंगे। यदि गांव में कोई विशेष घटना घटी है, या किसी शिक्षार्थी ने विशेष रूप से कोई बात जाननी चाही है। अथवा शिक्षार्थियों ने सामूहिक रूप से किसी विशेष कार्यक्रम की इच्छा व्यक्त की है तो केन्द्र-संचालक अध्यापक द्वारा उनकी भावनाओं का आदर किया जाना चाहिए और उसे अपने कार्यक्रम में तदनुरूप परिवर्तन कर देना चाहिए। नया कार्यक्रम जो भी रखा जाए उसके माध्यम से भी हिन्दी, गणित अथवा वातावरण का ज्ञान दिया जा सके, इस बात का ध्यान वह अध्यापक बराबर रखता रहे। इसका अर्थ यह नहीं है कि चूंकि केन्द्र के कार्यक्रम जब-तब बदल भी सकते हैं, अतः अध्यापक द्वारा कुछ पूर्व-नियोजन किया ही न जाए। पूर्व-नियोजन तो उसे करना ही चाहिए। ऐसे परिवर्तन की बातें अपवाद-स्वरूप ही होंगी। यदि उनकी आवृत्ति बहुत अधिक होती है तो यह समझना उचित होगा कि शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं का पूर्व-अनुमान ठीक से नहीं लगाया गया था, और इस स्थिति में सम्पूर्ण कार्यक्रम पर समग्र रूप से पुनः विचार किया जाना चाहिए।

केन्द्र-परिवीक्षक

केन्द्र एक बार स्थापित हो गए यही पर्याप्त नहीं है, उन केन्द्रों को बराबर सहायता मिलती रहनी चाहिए—सहायक सामग्री के रूप में और निरीक्षण के रूप में भी। किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम में परिवीक्षण बहुत उपयोगी होता है, परन्तु अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र जो अभी नये-नये ही स्थापित हुए हैं या होंगे व जिनके कार्यक्रम भी नये ही ढंग के होंगे, उनमें प्रभावी परिवीक्षण की और भी अधिक आवश्यकता होगी। सामान्यतः आज तक शिक्षा-तन्त्र की यह एक कमजोरी रही है कि विद्यालयों का विस्तार तो बराबर किया जाता रहा परन्तु उसके अनुरूप परिवीक्षण व्यवस्था पर ध्यान नहीं दिया गया। परिणामों से हम भलीभांति परिचित हैं। संभवतः इसी को ध्यान में रख कर अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों के

लिए पर्याप्त संख्या में परिवीक्षकों का प्रावधान किया गया है। प्रत्येक जिले में एक पूर्णकालिक प्रायोजना-अधिकारी वरिष्ठ-अध्यापक की वेतन शृंखला में रखा गया है। ग्रामीण व शहरी क्षेत्र के लिए अलग-अलग पूर्णकालिक परिवीक्षकों (द्वितीय शृंखला) की नियुक्ति की गई है। इसके अतिरिक्त शहरी क्षेत्रों में १० केन्द्रों पर एक अंशकालिक परिवीक्षक और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए प्रति ५ केन्द्रों पर एक अंशकालिक परिवीक्षक की नियुक्ति का प्रावधान रखा गया है। केन्द्र की स्थापना करते समय यह भी ध्यान रखा जाएगा कि पहले ऐसे गाँवों, कस्बों या उपनगरों को चुना जाए जहाँ एक ही साथ एक से अधिक केन्द्र खुल सकें। इससे निश्चय ही जहाँ कार्य में सफलता आएगी, वहाँ उन केन्द्रों को परिवीक्षण का अधिक लाभ भी मिल सकेगा। उल्लेख्य यह है कि अंशकालिक परिवीक्षक प्रतिदिन एक से अधिक या कम से कम एक केन्द्र पर अवश्य जाए। यदि एक ही स्थान पर अधिक केन्द्र होंगे तो अवश्य ही वह प्रतिदिन अधिक केन्द्रों का परिवीक्षण कर सकेगा। यदि केन्द्र किसी पास के गाँव में है व एक ही है तो एक दिन में एक से अधिक केन्द्र दखना शायद ही संभव हो।

प्रायोजना-अधिकारी और पूर्णकालिक परिवीक्षक वरिष्ठ अध्यापक की वेतन-शृंखला के होंगे। इन पदों पर ऐसे व्यक्तियों का चुनाव आवश्यक होगा जो इस नये कार्य के प्रति रुचिशील हों, जिनमें स्वयं सोचकर अपने स्तर पर ही काफी कुछ निर्णय लेने की क्षमता हो, विपरीत परिस्थितियों में भी गाँव-गाँव की यात्रा करने की क्षमता हो, आदि। कभी-कभी पदस्थापन में अन्य कारण भी बन जाते हैं, जैसे-कोई व्यक्ति किसी इच्छित स्थान पर साथ जाना ही चाहता हो, प्रवृत्ति में कोई विशेष रुचि न होते हुए भी। ऐसे व्यक्तियों से सावधानीपूर्वक बचे रहना ही हितकर होगा। इस कार्यक्रम के लिए सबसे प्रमुख योग्यता पात्र का उत्साह, रुचि, पहल शक्ति व नेतृत्व-कौशल ही होना चाहिए। अंशकालिक परिवीक्षक सामान्यतया केन्द्र के स्थान पर कार्यरत उच्च प्राथमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक या माध्यमिक उच्च माध्यमिक विद्यालय के कोई वरिष्ठक अध्यापक होंगे। ऐसे एक परिवीक्षक के दायित्व में पाँच केन्द्र होंगे। इन परिवीक्षकों के चुनाव में भी सावधानी की आवश्यकता होगी। पारिश्रमिक कोई विशेष नहीं है, अतः रुचि व समाज-सेवा की भावना ही चुनाव का मुख्य मानदंड बनेगी। परिवीक्षकों के चुनाव का कार्य जिला शिक्षा अधिकारी का है। इस कार्य में वरिष्ठ उपजिला शिक्षाधिकारी उनकी सहायता करेंगे। यदि जिला शिक्षाधिकारी व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम को उचित महत्व देंगे, परिवीक्षकों की सहायता करते हैं और समय-समय पर उन्हें प्रोत्साहन के दो शब्द कह देते हैं तो कोई कारण नहीं कि यह कार्य ठीक से न चले। यद्यपि पारिश्रमिक का अपना महत्व होता है परन्तु एक सामान्य शिक्षक परिवीक्षक के लिए इससे बढ़कर भी बहुत सी बातें होती हैं, जिनमें जिला शिक्षाधिकारी अथवा अन्य अधिकारी की सहृदयतापूर्वक उस तक पहुँच भी एक है।

परिवीक्षण कार्यकर्ताओं के लिए अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था में प्रशिक्षण आवश्यक होगा। इसका आयोजन राज्य-स्तर पर या मण्डल अथवा जिला-स्तर पर, कहीं भी हो सकता है। परिवीक्षण-कार्यकर्ताओं की नियमित बैठकें भी आवश्यक होंगी ताकि अनुभूत कठिनाइयों पर वे विचार कर सकें और उनके हल के उपाय खोज सकें। इन बैठकों में यथासंभव जिला शिक्षाधिकारी और वरिष्ठ उपजिला शिक्षाधिकारी अनिवार्यत: भाग लेंगे और उसका लेखा भी रखेंगे।

केन्द्र के लिए जो पूर्णकालिक अथवा अंशकालिक परिवीक्षक नियुक्त होंगे उनका कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। मात्र केन्द्र पर जाना, वास्तविक स्थिति का लेखा रखना या केन्द्र-संचालक अध्यापक की कमियाँ बताना ही उनका कार्य नहीं होगा। उनका कार्य होगा केन्द्र अध्यापक को सुचारु रूप से कार्य करने में सक्षम बनाना और उसकी सहायता करना। वह समय पर साधन-सामग्री पहुँचाने का कार्य करेगा, यदि केन्द्र पर उपस्थिति कम है तो गाँव के लोगों से मिलेगा, उनसे सम्पर्क स्थापित करके उनकी आवश्यकताएँ जानने का प्रयत्न करेगा और तदनुसार अध्यापक को कार्यक्रम के संयोजन में सहायता देगा। यदि कार्यक्रम में अन्य विभागों के व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाता है तो उनसे सम्पर्क करके निश्चित व्यवस्था करने में सहायता देगा। इस प्रकार उसका कार्य केन्द्र-संचालन में अध्यापक की हर संभव सहायता करने का है, चाहे केन्द्र-स्थान का चुनाव हो या साधन-सामग्री की उपलब्धि हो या जन-सहयोग की आवश्यकता हो या फिर अन्य कोई कार्य हो।
33 वह केन्द्र से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर केन्द्र के संचालक से विचार-विमर्श करता रहेगा और उसे हर संभव सहायता देगा। वह अपनी परिवीक्षणात्मक टिप्पणी समय-समय पर केन्द्र-पुस्तिका में लिखेगा जो मुख्यत: सुझावात्मक होगी। ये टिप्पणियाँ अलग से भी दी जा सकती हैं। केन्द्र के संचालन के बारे में जिला शिक्षा-प्रशासन को अवगत रखना भी उसी का कार्य होगा। इसके लिए एक निश्चित प्रणाली व प्रक्रिया जिला-स्तर पर विकसित की जा सकती है।

जिला-प्रशासन

जिले में अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था के मुख्य प्रभारी स्वाभाविकतया जिला शिक्षाधिकारी ही होंगे और उनके निर्देशन के अनुरूप ही इस कार्यक्रम की सफलता की स्थिति बनेगी। जिले में प्राथमिक शिक्षा के प्रभारी के रूप में वरिष्ठ उपजिला शिक्षाधिकारी कार्य करते हैं, अत: अनौपचारिक शिक्षा के कार्यकारी प्रभारी वे ही होंगे। उनकी लगन, सूझबूझ व पहल पर यह कार्यक्रम काफी निर्भर करेगा। उनकी सहायता के लिए जिला-स्तर पर अनौपचारिक शिक्षा के एक प्रयोजना-अधिकारी भी होंगे। ये तीनों ही मिलकर इस योजना का संचालन करेंगे।

सफलता की दृष्टि से कोई योजना कितनी ही अच्छी व उपयुक्त क्यों न हो, उसकी लक्ष्य-प्राप्ति तभी हो सकती है जबकि वह उसी लगन से व उसी ढंग

से क्रियान्वित हो। इस दृष्टि से जिला शिक्षा-प्रशासन की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका है। इस स्तर पर निम्नलिखित कार्य आवश्यक हैं :

१. अनौपचारिक केन्द्रों के स्थान का चुनाव
२. प्रारम्भिक सर्वेक्षण
३. केन्द्र के लिए संचालकों का चुनाव
४. केन्द्र के संचालकों का प्रशिक्षण
५. पाठ्यक्रम-निर्माण
६. अन्य अभिकरणों को अनौपचारिक कार्यक्रम से सम्बद्ध करना और उनके प्रभावी सहयोग की योजना बनाना।
७. केन्द्र के संचालकों के प्रोत्साहन का कार्य
८. प्रभावी परिवीक्षण की व्यवस्था
९. समय पर प्रशासनिक व्यवस्थाएं पूर्ण करना ताकि साधन-सामग्री आदि का केन्द्र पर अभाव न रहे
१०. सम्पूर्ण कार्यक्रम का मूल्यांकन

प्रत्येक केन्द्र पर आवश्यक अभिलेख रखे जाएँगे, जैसे-उपस्थिति-पत्रक, सामग्री-वितरण पत्रक, अध्ययन में सहायक सामग्री की सूची, कार्यक्रम-आयोजन, व्यक्तिगत-प्रगति पत्र, केन्द्र का मासिक प्रगति-विवरण, परिवीक्षण-पंजिका आदि। इसी प्रकार जिला-कार्यालय में भी समग्र कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु इसी प्रकार के अभिलेख रखे जाएँगे जिससे प्रत्येक केन्द्र की प्रगति व कार्य का विवरण निरन्तर प्राप्त होता रहे व उनका संकलन होता रहे। प्रत्येक जिलाशिक्षाधिकारी अपने क्षेत्र के केन्द्रों का मासिक प्रतिवेदन शिक्षा-निदेशालय को भेजेगा। उसकी एक प्रति राज्य शिक्षा संस्थान को भी भेजी जाएगी। मासिक प्रतिवेदन व अन्य अभिलेखों का प्रारूप शिक्षा-निदेशालय द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। 35

जिला-स्तर पर समस्त कार्यक्रम का अर्धवार्षिक मूल्यांकन किया जाना श्रेयस्कर होगा ताकि उसके आधार पर कमी के क्षेत्रों का पता लगाया जा सके व सुधार किया जा सके। मूल्यांकन मासिक प्रतिवेदनों, परिवीक्षण-टिप्पणियों और केन्द्र अध्यापकों व परिवीक्षकों के विचारों के आधार पर किया जा सकता है। मूल्यांकन केवल कागजों में ही सीमित नहीं रह जाए, इसके लिए अनुवर्तन कार्य नितान्त आवश्यक होगा। इसके बिना मूल्यांकन-प्रतिवेदनों से कोई लाभ नहीं होगा। अगले मूल्यांकन-प्रतिवेदन में यह अवश्य उल्लेख होना चाहिए कि पूर्व-मूल्यांकन के आधार पर किस-किस अनुवर्तन-कार्यवाही की अपेक्षा थी व उसमें किस सीमा तक सफलता मिली, यदि कोई कार्य न हो सका तो उसके क्या कारण थे। अर्धवार्षिक मूल्यांकन, केन्द्र-अध्यापक अपने स्तर पर स्वयं करे और जिला-स्तर पर जिला शिक्षाधिकारी।

राज्य शिक्षा संस्थान

प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम का सारा शैक्षणिक संचालन राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा होगा। यह संस्थान इन केन्द्रों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करेगा, जिला-स्तर पर स्थानीय पाठ्यक्रम बनाने में जिला-प्रशासन की सहायता करेगा, संदर्भ व्यक्तियों के प्रशिक्षण का आयोजन करेगा और संकल्पनाएं स्पष्ट करने के लिए समय-समय पर साहित्य-निर्माण करेगा। पाठ्यपुस्तकें तैयार करने का कार्य भी राज्य शिक्षा संस्थान कर सकता है। जब अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र सारे राज्य में सफलता पूर्वक कार्य करने लगेंगे तब मंडल अथवा जिलानुसार पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता हो सकती है। ऐसी पाठ्य-पुस्तकें लिखने वालों का प्रशिक्षण आयोजित करना, स्थानीय वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करके उनसे पुस्तकें लिखवाना और उनका संशोधन कराना भी राज्य शिक्षा संस्थान का दायित्व होगा। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए आवश्यक सहायक सामग्री की सूची बनाने और आवश्यकतानुसार नई सामग्री तैयार कराने का कार्य भी राज्य शिक्षा संस्थान को सम्पादित करना होगा। जो विद्यार्थी केन्द्रों से शिक्षा समाप्त कर लेंगे, उनके लिए निरन्तर अध्ययन हेतु सहायक पुस्तकों की भी आवश्यकता होगी। राज्य शिक्षा संस्थान ऐसी पुस्तकों के बारे में शिक्षा-निदेशालय को सुझाव देगा व यथासंभव कुछ तैयार भी कराएगा। अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों के सफल संचालन के लिए अनुसंधान करना और वार्षिक मूल्यांकन में निदेशालय की सहायता करना भी इसी संस्थान का कार्य होगा। संक्षेप में, अनौपचारिक शिक्षा का सारा शैक्षणिक कार्य राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा सम्पादित होगा।

शिक्षा-निदेशालय

राज्य में अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना व उनके सफल संचालन की प्रशासनिक, व राज्य शिक्षा संस्थान की सहायता से शैक्षणिक योजना बनाना शिक्षा-निदेशालय का ही कार्य है। अच्छी योजना के निर्माण के साथ-साथ उसकी क्रियान्विति पर दृष्टि रखना भी उतना ही आवश्यक होता है। सफल क्रियान्विति के लिए निदेशालय समय पर बजट की व्यवस्था व प्रशासनिक आदेश जारी करेगा। जिला-स्तर से जो मासिक प्रतिवेदन प्राप्त होंगे, उनकी समीक्षा करके सम्पूर्ण राज्य का प्रतिवेदन तैयार किया जाएगा और समय-समय पर प्रगति की समीक्षा की जाएगी। जिस प्रकार प्रत्येक केन्द्र व जिला-स्तर पर अर्धवार्षिक मूल्यांकन होगा उसी प्रकार का मूल्यांकन निदेशालय द्वारा राज्य-स्तर पर भी किया जाएगा। वर्ष के अन्त में वार्षिक प्रतिवेदन पर शिक्षाधिकारियों की वार्षिक शैक्षणिक संगोष्ठी में विचार किया जाए, ताकि अगले सत्र की कार्य योजना में उससे लाभ उठाया जा सके।

स्वैच्छिक संस्थाएं

राजस्थान में ८-१४ आयु वर्ग के लिए अनौपचारिक शिक्षा कार्य सरकारी

व गैर सरकारी दोनों संस्थाएँ कर रही है। स्वैच्छिक संस्थाओं की स्थापना समाज के लोग मिलकर अपनी अनुभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करते हैं। जहाँ सरकारी अभिकरण को समाज से सहयोग प्राप्त करने के लिए कार्य करना पड़ता है वहाँ समाज का सहयोग व पहल इनमें पहले से मौजूद होती है। इस तरह से अनौपचारिक-शिक्षा-कार्यक्रमों के लिए इनकी उपयोगिता स्वयं सिद्ध है। मूल बात इनकी भूमिका को अच्छी तरह से समझने और इन्हें कार्यक्रम की सफलता के लिए सहयोग देने की है। प्रयत्न यही रहना चाहिए कि जहाँ-जहाँ स्वैच्छिक संस्थाएँ पहल करके आगे आएं, उन्हें पूर्ण समर्थन दिया जाए और जहाँ इस प्रकार की संभावनाएँ हो सकती हैं उनको खोज की जाए।

स्वैच्छिक संस्थाओं की प्रमुख कठिनाई समय पर राजकीय आर्थिक सहायता न मिल पाने की होती है, अतः बल इस बात पर होना चाहिए कि उन्हें समय पर आर्थिक सहायता की रकम आवंटित कर दी जाए ताकि वे अपना कार्य सुचारु रूप से चला सकें। स्वैच्छिक संस्थाएँ शिक्षा का यह कार्यक्रम राज्य के पूरक अंग के रूप में करती हैं, अतः इन्हें पूर्ण सहयोगी के रूप में ही समझना चाहिए और उपयुक्त ही आपसी व्यवहार होना चाहिए – समानता का, सहयोग का और स्वतन्त्रता का। कार्य करने के कई तरीके हो सकते हैं, अतः किसी एक तरीके पर ही बल देना उपयुक्त नहीं होता। कार्य करने के तरीकों में विभिन्नता होना कोई बुरी बात नहीं है और इस दृष्टि से ही सभी अभिकरणों को सोचना चाहिए–चाहे वे राजकीय हो अथवा स्वैच्छिक।

हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि वास्तविक रूप से कार्य करने की भावना से ओत-प्रोत अधिक से अधिक स्वैच्छिक संस्थाएं शिक्षा के इस कार्यक्रम के लिए आगे आएं और उन्हें राज्य का पूरा प्रोत्साहन मिले।

370
15/7/82

NIEPA DC

Edn. Planning Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B,Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No.....
Date.....

Ready to Rethink & Change?

One of the essential tasks for educators at present is to change the mentalities and qualifications inherent in all professions; thus they should be the first to be ready to rethink and change the criteria and basic situation of the teaching profession, in which the job of educating and stimulating students is steadily superseding that of simply giving instruction.

—Learning to Be

Non-Formal Education

Any organised systematic educational activity carried on outside the framework of the established formal system whether operating separately or as an important feature of some broader activity that is intended to serve identifiable learning clienteles and learning objectives.

— Philip Coombs